DFID Department For International Development

NOT TO BE ISSUED

133

# प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा का प्रबंधन

## (विलायती बबूल)

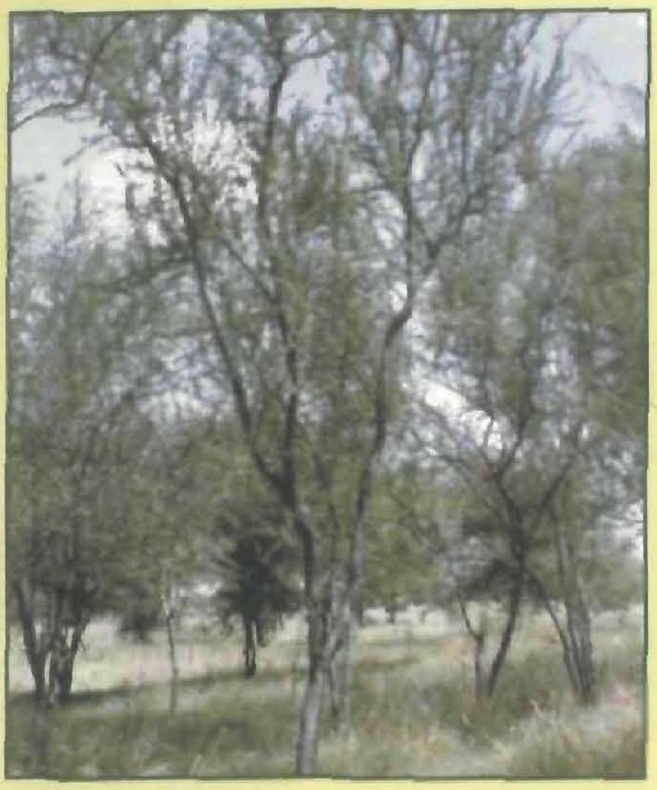

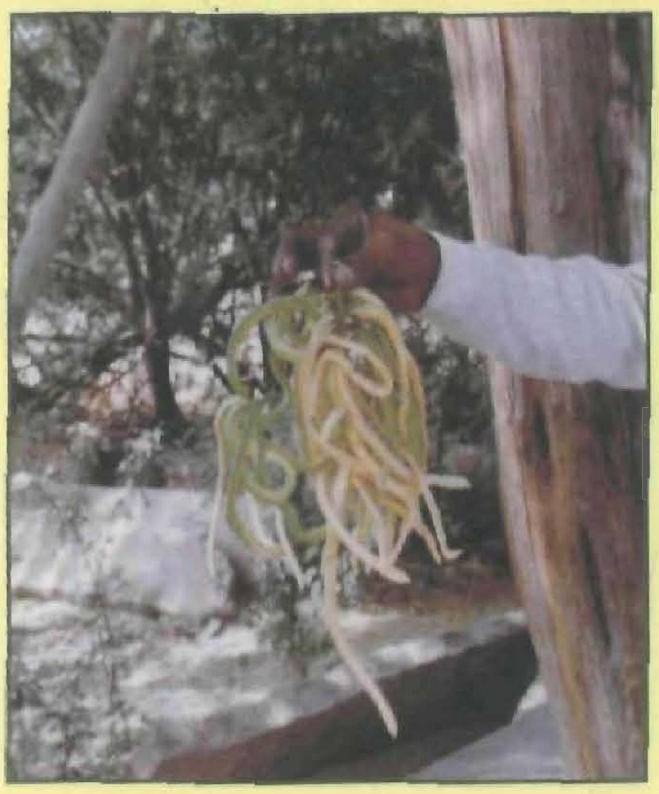

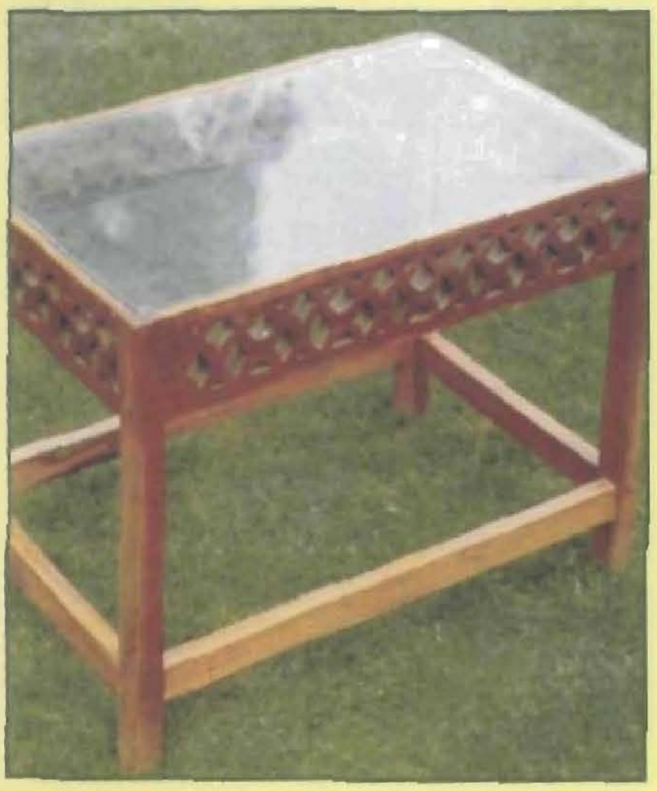

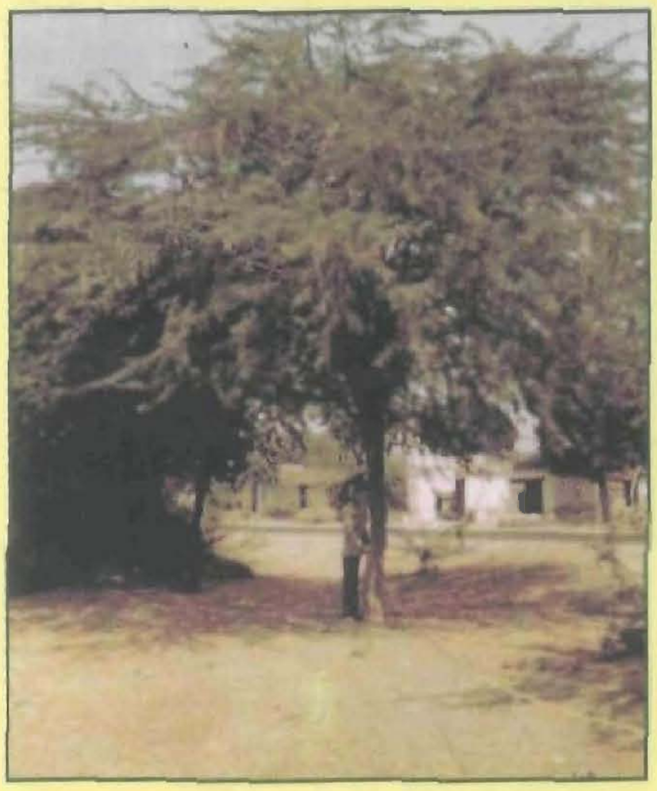

HDRA the organic organisation

FRP FORESTRY RESEARCH PROGRAMME

# प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा का प्रबंधन

(विलायती बबूल)

# *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* (विलायती बबूल) का प्रबंधन

**2001**

जे.सी. तेवारी[1], पी.जे.सी. हेरिस[2], एल.एन. हर्ष[1], के. केडोरेट[2], और एन.एम. पेसीजनिंक[2]

[1] केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
लाइट औद्योगिक क्षेत्र
जोधपुर 342003
भारत
दूरभाष : + 91291 740584
फैक्स : + 91291 740706
ई–मेल : root@cazri.raj.nic.in

[2] एच.डी.आर.ए.–कार्बनिक संगठन
रायटन ऑन डन्समोर
कोवेन्टरी सी.वी. 8 3 एल.जी.
यू.के.
दूरभाष : + 4424 76303517
फैक्स : + 4424 76639229
ई–मेल : enquiry@hdra.org.uk

**हिन्दी अनुवादक :**
जीवन चन्द्र तेवारी, अरूण कुमार शर्मा
धर्मेन्द्र त्रिपाठी, माधवदेव बोहरा तथा
लक्ष्मीनारायण हर्ष

**केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान**
**जोधपुर (राज.)**

एच. डी. आर. ए., यू. के. के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित।

© सर्वाधिकार सुरक्षित : 2001 काजरी/एच. डी. आर. ए. संस्करण

इस पुस्तक का कोई भी अंश लेखक की अनुमति के बिना मुद्रित अथवा पुनः प्रसारित नहीं किया जा सकता है। परंतु इसकी छायाप्रति का उपयोग बिना आर्थिक लाभ के उद्देश्यों हेतु किया जा सकता है।

संदर्भ हेतु : जे.सी. तेवारी, पी.जे.सी. हेरिस, एल.एन. हर्ष, के. केडोरेट और एन.एम. पेसीजनिंक, प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा (विलायती बबूल) का प्रबंधन। काजरी, जोधपुर, भारत और एच. डी. आर. ए., कोवेन्टरी, यू.के. 96 पेज

ISBN : 0905343271

आमुख पृष्ठ आलोक चित्र : एल. एन. हर्ष और एन. एम. पेसीजनिंक

मुद्रक : *इण्डियन मैप सर्विस*
शास्त्रीनगर, जोधपुर – 342 003 (राज.) भारत

# भूमिका

*'प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा'* को भारत के कुछ क्षेत्रों में सामान्यतया विलायती बबूल के नाम से जाना जाता है। शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 40 प्रतिशत भाग में विस्तारित है, इनमें यह प्रजाति पूर्ण रूप से फैल चुकी है, जबकि इसे सिर्फ 130 वर्ष पूर्व भारत में लगाया गया था। पिछले कुछ वर्षों में इसके तीव्र गति से फैलने के कारण पर्यावरणविदों, अनुसंधानकर्ताओं, वन अधिकारियों, योजनाकारों और राजनीतिज्ञों आदि ने इस प्रजाति के बारे में अपने अलग–अलग वक्तव्य देना शुरु कर दिए, जिसकी वजह से अंतिम उपयोगकर्ता अर्थात किसानों को इस प्रजाति के बारे में एक भ्रम की स्थिति बनी हुई है।

इस प्रजाति के साथ चाहे जो कोई फायदा या नुकसान जुड़ा हो परंतु एक बात निश्चित है कि यह प्रजाति भौतिक रुप से उन विषम परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में भी उगने की क्षमता रखती है जहाँ कोई भी वनस्पति नहीं लग पाती है। इस प्रकार इस प्रजाति ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह उष्णीय शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में संरक्षण वानिकी हेतु एक उपयोगी काष्ठीय प्रजाति है। यह आँकलित किया गया है कि भारत के ग्रामीण शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में 70 प्रतिशत जलाऊ लकड़ी विलायती बबूल से प्राप्त होती है इसके अलावा इसकी फलियाँ पशुओं के चारे के रुप में काम में आती है। ग्रामीण गरीब किसान इसके महत्व को अच्छी तरह जानता है, जबकि कुछ संपन्न लोगों की इसके बारे में यह विचारधारा है कि यह प्रजाति एकाग्र रुप से बढ़ने वाली, सौन्दर्यकरण मूल्य की कमी रखने वाली एवं शायद जल–स्तर को घटाने वाली है।

इसके उद्‌गम स्थान पर इसको कई तरह से उपयोग में लाया जाता है जैसे टिम्बर (इमारती लकड़ी) जलाऊ लकड़ी, गोंद, कई खाद्य पदार्थ (कॉफी, बिस्किट) तथा पशुचारे इत्यादि। परंतु भारत में इसका मुख्य रुप से जलाऊ लकड़ी तथा कोयले के रुप में प्रयोग किया जाता है तथा अन्य उपयोगों के बारे में सही जानकारी न होने के कारण भारत व कई अन्य देशों के लोग इससे वंचित हैं।

हम लम्बे समय से इस पौधे के प्रबन्धन तथा उपयोग पर विस्तृत जानकारी देने वाली तकनीकी पुस्तक तैयार करने की सोच रहे थे तथा सन् 2000 में इस विषय पर अंग्रेजी में एक तकनीकी मेन्यूल DFID द्वारा अनुदानित एक वानिकी परियोजना (RJ 295) के तहत प्रकाशित किया गया। इसके प्रकाशन के वक्त यह भी विचार किया गया कि यह पुस्तक हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित की जाए, जिससे अधिक से अधिक लोग इसके सम्बन्ध में पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त कर सके।

उपयुक्त संक्षिप्त विचारधारणा के साथ हम यह आशा करते हैं कि यह पुस्तक भारत के उष्णीय–शुष्क तथा अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाली *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* (विलायती बबूल) के प्रबंधन तथा उपयोगिता के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करेगी।

**लेखक**

# आभार

यह प्रकाशन अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग (DFID) यू. के. के वित्तीय सहयोग से प्रदान की गई अनुसंधान परियोजना का परिणाम है।

लेखक सर्वप्रथम भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के आभारी हैं जिसके द्वारा इस परियोजना को अनुमति प्रदान की गई और विशेष रुप से डॉ. जे.एस. सामरा, उप महानिदेशक, प्राकृतिक संसाधन प्रबन्ध और डॉ. पी.एस. पाठक, पूर्व सहायक निदेशक, कृषि वानिकी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली का आभार व्यक्त करते हैं जिनके विशेष सहयोग से इस परियोजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया गया।

लेखक, डॉ. प्रताप नारायण, निदेशक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) के द्वारा समय–समय पर दिये जाने वाले वांछित सहयोग एवं उत्साहवर्द्धन के लिए अनुग्रहित हैं। साथ ही डॉ. अमरसिंह फरोदा (पूर्व निदेशक) काजरी एवं डॉ. जे. पी. गुप्ता, विभागाध्यक्ष, डिवीजन II काजरी का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनके उचित मार्गदर्शन से इस कार्य को पूर्ण करने में सफलता प्राप्त हुई।

लेखक उन सभी सहभागियों को धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिन्होंने 14-18 फरवरी, 1999 को काजरी में हुई अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला में भाग लिया और अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया। इसमें विशेष रुप से परियोजना सहयोगियों में विदेशों से सर्व श्री पीटर फेल्कर, गेस्टान क्रूज व लोरेन्जो मेलडोनान्डो और भारतीय सहयोगियों में सर्व श्री गुरबचन सिंह, एम.सी. देसाई, ए.के. वार्शनेय, के.आर. सोलंकी, आर.पी. सिंह, पी.एस. तोमर एवं एच.एम. बहल आदि का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

अंत में लेखक अपने घनिष्ठ सहयोगियों एवं विभागीय कर्मचारियों को धन्यवाद प्रदान करते हैं जिनके विशेष उत्साह व लगन के कारण इस पुस्तक को अंतिम रुप दिया जा सका है, इनमें विशेष रुप से डॉ. प्रतिभा तिवारी (वरिष्ठ वैज्ञानिक) गृह विज्ञान एवं जी.एल. मीणा (तकनीकी अधिकारी) का आभार व्यक्त करते हैं जिनके द्वारा समय–समय पर दिए गए सहयोग से इस पुस्तक को पूर्ण करने में सफलता प्राप्त हुई है।

# विषय सूची


प्रस्तावना .................................................................................... 1

I विलायती बबूल व अन्य विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों का वितरण ........... 4

II भारत में लगाई गई विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों का परिचय ................ 7

क. *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* (स्वार्ट्ज) डीसी (विलायती बबूल) ................. 8
ख. *प्रोसोपिस पैलिडा* (हमबोल्ट एवं बोन्पलैन्ड एक्स विलडेनाउ) एचबीके ...................................................................... 10
ग. *प्रोसोपिस एल्बा* (ग्रिसबैक) ................................................ 14
घ. *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* (मोलीना) स्टंट्ज एमेन्ड बुरकार्ट ..................................................................... 15
ड. *प्रोसोपिस ग्लेन्ड्युलोसा* ..................................................... 16
च. *प्रोसोपिस फ्लैक्सुओसा* ...................................................... 17
छ. *प्रोसोपिस नाइग्रा* (ग्रिसबैक) हीरोनाइमस .................................. 18

III. फलियों का संग्रहण, भंडारण एवं बीजों का निस्सारण ......................... 19

क. बीजों के लिए फलियों का संग्रहण ........................................... 19
ख. फलियाँ सुखाना व भंडारण .................................................... 22
ग. बीजों का निस्सारण .............................................................. 24

IV. नर्सरी में विलायती बबूल की पौध तैयार करना ............................... 27

क. बीज का पूर्वोपचार ............................................................... 27
ख. नर्सरी तकनीक .................................................................... 30
ग. अंकुरण, पौध की बढ़वार तथा रखरखाव ...................................... 34
घ. काईक प्रवर्धन ..................................................................... 38

V. नये प्लांटेशन (रोपवनों) का सृजन ................................................ 44

क. सामान्य उद्रोपण विधियाँ ......................................................... 44
ख. रेतीले मैदान ....................................................................... 45
ग. रेतीले टीबे ......................................................................... 47
घ. छिछली रेतीली मृदाएँ ............................................................ 48
ङ. पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली भूमि ............................................. 49
च. भारी चिकनी मृदाएँ .............................................................. 50
छ. क्षारीय मृदाएँ ...................................................................... 52
ज. लवणीय मृदाएँ एवं लवणीय जल से प्रभावित क्षेत्र
झ. कन्दरा या बीहड़ भूमि ........................................................... 54

VI. **रोपण प्रबन्धन** .................................... **56**

क. उत्पादन व रक्षण के लिए रोपण घनत्व .................................... 56
ख. रखरखाव .................................... 58
ग. वृद्धि और प्राप्ति .................................... 64

VII. **प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने विद्यमान वृक्ष समूहों का प्रबंधन** .................................... **67**

क. प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने वृक्ष समूहों के प्रकार .................................... 67
ख. प्रबंधन के तरीके .................................... 69
ग. काष्ट समूह का प्रबंधन .................................... 72
घ. प्राकृतिक विलायती बबूल का सुधार .................................... 73

VIII. **विलायती बबूल के उपयोग** .................................... **75**

क. लकड़ी की उपयोगिता .................................... 75
ख. फली की उपयोगिता .................................... 82
ग. अन्य प्रत्यक्ष उपयोग .................................... 86
घ. अप्रत्यक्ष उपयोग .................................... 88

**परिशिष्ट** 1 : .................................... **92**

**परिशिष्ट** 2 : .................................... **94**

**संदर्भ** .................................... **96**

# प्रस्तावना

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्र 32.9 लाख वर्ग किलोमीटर है। इस कुल क्षेत्र का 51 प्रतिशत भू–भाग कृषि उपयोग हेतु एवं 1.6 प्रतिशत वनों के अन्तर्गत है। चार प्रतिशत क्षेत्र में स्थायी चारागाह है एवं शेष 29 प्रतिशत भाग भू–क्षरण के कारण फसलोत्पादन के लिए अनुपयुक्त है। इस विशाल भू–भाग में अति–शुष्क से अति–नम तक विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती हैं। देश का 40 प्रतिशत भू–भाग सम्मिलित रुप से शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क जलवायु के अन्तर्गत 10 राज्यों में विस्तारित है (तालिका–1)। शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र की जलवायु वनस्पति की वृद्धि व पुर्नजनन के लिहाज से प्रतिकूल है जिसके कारण यहाँ वनस्पति का घनत्व बहुत कम है। भारत के शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र में वन–आच्छादित भूमि का क्षेत्रफल कुल 1 से 10 प्रतिशत के मध्य है। इन क्षेत्रों के वनों में प्रजाति विभिन्नता भी बहुत कम है।

**तालिका 1. भारत में शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र का वितरण**

| राज्य | कुल भू–भाग का प्रतिशत | |
|---|---|---|
| | शुष्क | अर्द्ध–शुष्क |
| आंध्र प्रदेश | 7 | 14 |
| गुजरात | 20 | 9 |
| हरियाणा | 4 | 3 |
| कर्नाटक | 3 | 15 |
| मध्यप्रदेश | 0 | 6 |
| महाराष्ट्र | <1 | 20 |
| पंजाब | 5 | 3 |
| राजस्थान | 61 | 13 |
| तमिलनाडु | 0 | 10 |
| उत्तरप्रदेश | 0 | 7 |

आदिकाल से ही भारत के शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र के निवासी वन/काष्ठ के स्रोतों को, जीवनयापन के लिए आवश्यक कृषि एवं लघु ग्रामीण उद्योग–धन्धों जैसे, लकड़ी के कार्यो (फर्नीचर, कृषि उपयोग के यंत्र, गृह निर्माण कार्य इत्यादि) एवं लौह सम्बन्धित कार्यो (लोहार के द्वारा किए जाने वाले कार्य) में निर्विघ्नता से उपयोग करते आ रहे हैं। शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में कृषि–तंत्रों में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी एवं पत्तियों का चारे के रुप में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, परन्तु पिछले पाँच दशक से निरन्तर बढ़ती मानव व पशुधन की जनसंख्या के कारण निरन्तर बढ़ते जैविक दबाव के फलस्वरुप तीव्र गति से होता हुआ अवनीकरण आज शोचनीय दशा में पहुँच चुका है। उदाहरणार्थ, 1980 के दशक में कानून सम्मत संसाधनों से 170 लाख घनमीटर लकड़ी की देश में उपलब्धता थी, जबकि उस समय वास्तविक आवश्यकता 1840 लाख घनमीटर लकड़ी की थी। एक आंकलन के अनुसार यह आवश्यकता 2001

में 2250 लाख घनमीटर तक पहुँच जाएगी क्योंकि देश में आज भी लकड़ी, भोजन बनाने के लिए 70 प्रतिशत मानव जनसंख्या का मुख्य उर्जा स्रोत है, अतः यह निश्चित है कि इस आवश्यकता पूर्ति हेतु लकड़ी गैर कानूनी ढंग से वन व वृक्षों के दोहन व पातन से प्राप्त की गयी होगी। यद्यपि सारे देश में ही गैरकानूनी वन दोहन व वृक्ष पातन की स्थिति लगभग एक जैसी ही है, परन्तु शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्थिति कुछ अधिक ही भयावह है।

अंग्रेजों के आधिपत्य काल से ही योजनाकारों, नीति–निर्धारकों एवं वानिकी विशेषज्ञों ने देश के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में, विश्व के सम–जलवायु वाले स्थानों से तीव्र वृद्धि दर एवं उच्च अनुकूलन क्षमता वाली वृक्ष प्रजातियों को समावेशित करने के कार्य को अत्यधिक महत्व दिया। इन विदेशों से लायी गयी कुछ प्रजातियों ने नए वातावरण में अनुकूलन व वृद्धि की अद्‌भुत क्षमता प्रदर्शित की। *प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा (स्वार्टज) डीसी* अर्थात् **विलायती बबूल** इन विदेशी प्रजातियों में एक ऐसी प्रजाति निकली जिसकी वृद्धि, पुनरूत्पादन व अनुकूलन क्षमता कई देशज प्रजातियों से भी उच्च गुणवत्ता वाली हैं। वर्तमान में विलायती बबूल भारत के शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या की जलाऊ लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। यह प्रजाति आज भारत के उत्तर–पश्चिमी, पश्चिमी, मध्य एवं दक्षिणी क्षेत्रों के बड़े भू–भाग में वातावरणानुसार अनुकूलित होकर विस्तृत रुप में फैल चुकी है।

विलायती बबूल की शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क वातावरण में अनुकूलित होने की अद्‌भुत क्षमता व इसकी तीव्र वृद्धि दर, और वृक्ष का बहुपयोगी होना, कुछ ऐसे गुण थे जिनके कारण वानिकी विशेषज्ञों ने इसे शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के वनीकरण के हेतु एक प्रमुख प्रजाति के रुप में मान्यता दी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इन क्षेत्रों के ग्रामीण व कृषक वर्ग में इस वृक्ष प्रजाति के लिए कुछ विपरीत अवधारणायें हैं, (1) इनका मानना है कि यह प्रजाति खेतों में फसलों की वृद्धि व उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालती है ; (2) इन लोगों को भय है कि भविष्य में यह प्रजाति खेतों में खर–पतवार की भाँति फैल जायेगी और (3) इस प्रजाति के पौधों के तनों व शाखाओं में जो तीक्ष्ण कांटे होते हैं, वह बहुधा मनुष्य व जानवरों को चुभकर चोटिल कर देते हैं, एवं कृषि कार्यों में रुकावट पैदा करते हैं।

इस प्रजाति के साथ जो भी लाभ और हानिकारक कारण हों, परन्तु यह बात निर्विवाद सत्य है कि विलायती बबूल भारत के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के कृषि–परिस्थितकी तंत्रों का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। यह प्रजाति शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में वनीकरण, परती भूमि विकास, ग्रामीण गोचर भूमि विकास, चारागाह विकास और रेल पटरियों, सड़क एवं नहर के किनारे वृक्षारोपण हेतु बहुतायत में उपयोग में लाई गई है। इसके अतिरिक्त, देश के संपूर्ण शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में इस प्रजाति का प्राकृतिक पुनरूत्पादन भी बहुत अच्छा है।

यद्यपि विलायती बबूल भारत के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र के ग्रामीण परिवेश में अपना एक विशेष महत्व रखता है, परन्तु इस प्रजाति की पूर्ण क्षमता को ग्रामीण वनीकरण के क्षेत्र में उपयोग में नहीं लाया जा सका है। विशेषतः यह परम आवश्यक है कि इस

प्रजाति के समुचित प्रबन्धन, और इसके बहुउद्देश्यीय उपयोगों से सम्बन्धित नवीनतम् वैज्ञानिक तथ्यों एवं सूचनाओं को कृषक वर्ग राज्य सरकारों के वन, कृषि, पशुपालन व जिला ग्रामीण विकास विभागों तथा गैर सरकारी ग्रामीण विकास संस्थाओं तक त्वरित गति से पहुँचाया जाए।

विलायती बबूल पर यह तकनीकी पुस्तक प्रयोगात्मक विषय–वस्तु पर आधारित है, व इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीणजनों और उन लोगों को जो कि वनीकरण एवं भूमि विकास के सम्बन्ध में कृषकों व अन्य संबंधित व्यक्तियों का दिशा–निर्देशन करते हैं, उन्हें इस प्रजाति के समुचित प्रबन्धन व इसकी बहुउद्देश्यीय उपयोगिता के बारे में नवीनतम सूचनाएं व वैज्ञानिक तथ्यों से अवगत कराना है (चित्र 1)। पुस्तक के मुख्य उद्देश्य लक्षित करते हैं: (1) इस प्रजाति की पौध उत्पादन के लिए उपयुक्त नर्सरी तकनीक, नर्सरी उत्पादित पौध का भूमि में प्रत्यारोपण की समुचित विधियां, प्लांटेशन का उचित रख–रखाव और उत्तम प्रबन्धन विधियाँ, तथा (2) इस प्रजाति को उपयोग में लाने वालों को इसकी बहु–उद्देश्यीय उपयोगिता के बारे में दिशा–निर्देशन देना। जो तकनीक इस प्रजाति के सम्बन्ध में इस पुस्तक में दी गई है, वह सब, इस प्रजाति के समकक्ष गुणों वाली अन्य प्रजातियॉ जो शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में वनीकरण व वृक्षारोपण कार्यक्रमों में उपयोग में लाई जा रही है, उनके प्रबन्धन व बहुउद्देश्यीय उपयोगों में भी कारगर सिद्ध होगी।

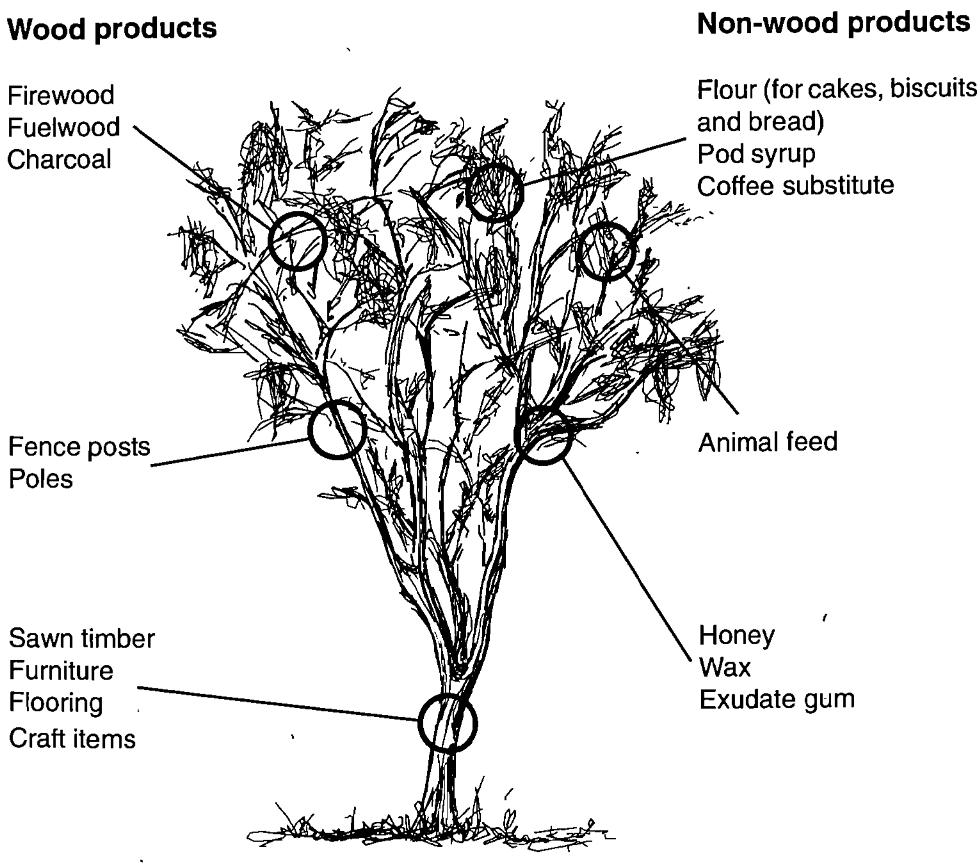


चित्र – 1 प्रो. जुलिफ्लोरा और प्रो. पैलिड़ा वृक्ष के सरलता से विक्रय होने वाले उत्पाद।

# I. विलायती बबूल व अन्य विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों का वितरण

विलायती बबूल का भारत में प्रवेश का इतिहास लगभग 130 वर्ष पुराना है। इस प्रजाति को गंभीरतापूर्वक लगाने का प्रथम प्रयास सन् 1870 में किया गया। तत्पश्चात् इस वृक्ष की तीव्र वृद्धि दर एवं अनावृष्टि की स्थिति में भी इसकी पल्लवित होने की अद्भुत क्षमता को देखकर, इसे भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग से सुदूर दक्षिणी भाग तक कई स्थानों में लगाया गया। प्रथम बार लगाने के प्रयास के समय से ही, इस प्रजाति ने प्लांटेशन वानिकी (Plantation Forestry) के क्षेत्र में अपनी अटूट क्षमता का परिचय देना प्रारंभ कर दिया और परिणामस्वरुप इस प्रजाति के द्वारा अति लवणीय भूमि; क्षारीय भूमि; समुद्र के किनारों की भूमि; थार मरुस्थल के रेतीले धोरों वाले क्षेत्रों; उत्तर, मध्य एवं दक्षिणी भारत की कई नदियों के क्षेत्र में आई कन्दरा भूमि; एवं शुष्क व अति क्षरित घास के मैदानों में वनीकरण का कार्य किया गया।

विलायती बबूल अब भारत के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क उष्णदेशीय (Tropical) क्षेत्रों में पूर्ण रुप से अनुकूलित विदेशी प्रजाति है। यह प्रजाति उन क्षेत्रों में प्रचुरता से पाई जाती है, जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 150 से 750 मिलीमीटर के मध्य हो और औसत अधिकतम तापमान 40 से 45 सेन्टिग्रेट के मध्य होता है। भारत में उत्तर–पश्चिम से दक्षिण तक, यह प्रजाति पंजाब से तमिलनाडु तक; एवं पश्चिम से पूर्व की दिशा में गुजरात राज्य के कच्छ क्षेत्र से उड़ीसा राज्य के शुष्क क्षेत्रों तक वितरित है (चित्र 2)। विलायती बबूल जिन राज्यों में प्रमुखता से पाया जाता है, वे हैं – आन्ध्रप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश। भारत के उष्णदेशीय शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में इस प्रजाति का साम्राज्य अधिकांशतः मैदानी भागों और घाटियों में फैला हुआ है, परन्तु कई स्थानों में यह प्रजाति समुद्र तल से 1200 मीटर की ऊँचाई में भी पाई जाती है।

### विलायती बबूल की क्षमता

भारत में लवणीयता से प्रभावित भूमि लगभग एक करोड़ हैक्टेअर क्षेत्र में फैली हुई है। इसी प्रकार शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में लगभग 1.3 करोड़ हैक्टेअर परती भूमि है। यह 2.3 करोड़ हैक्टेअर भूमि विलायती बबूल के प्लांटेशन के लिए सहजता से उपलब्ध है। यदि औसत काष्ठ उत्पादन प्रति हैक्टेअर 3 घनमीटर मानकर चलें (3 घनमीटर प्रति हैक्टेअर काष्ठ उत्पादन न्यूनतम उत्पादन निरूपण है), तो वार्षिक काष्ठ उत्पादन लगभग 700 लाख घनमीटर प्राप्त किया जा सकता है। यह आँकड़ा वर्तमान में उपलब्ध जलाऊ लकड़ी जो वनों से प्राप्त हो रही है, उससे 250 प्रतिशत अधिक उत्पादन को इंगित करता है।

विलायती बबूल विभिन्न प्रकार की मृदाओं व स्थितियों में पल्लवित होने की क्षमता रखता है। परन्तु यह सामान्यतः उन क्षेत्रों में नहीं पाया जाता जहाँ सर्दियों में बहुधा पाला (Frost) पड़ जाता है, व इसी प्रकार यह हिमालय पर्वत व उसके आस–पास के क्षेत्रों

और गर्म–नम क्षेत्रों जैसे, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, पश्चिम बंगाल राज्य एवं केरल राज्य में भी इसका वितरण नहीं है। परन्तु, बिहार, उड़ीसा व केरल राज्य के कुछ क्षेत्रों में कृषक इस प्रजाति को अपने खेतों में जीवित बाड़ (Live Fence) के रुप में रोपित करते हैं।

गुजरात राज्य के कच्छ क्षेत्र; राजस्थान का पश्चिमी शुष्क क्षेत्र; पश्चिम और दक्षिण–मध्य उत्तर प्रदेश, हरियाणा का पश्चिमी भू–भाग और आंध्र प्रदेश के कुछ छोटे, भू–भागों में यह प्रजाति प्रमुखता से वितरित है। अपने संपूर्ण वितरण क्षेत्र में, इस प्रजाति के पौधे बहुधा इधर–उधर फैली हुई अति घने झाड़ी समूहों (Thickets) के रुप में पाए जाते हैं। इस प्रजाति के ब्लॉक प्लांटेशन बहुत ही कम है, परन्तु विलायती बबूल को बहुधा सड़क, रेल की पटरियों व नहरों के किनारे; गांवों के तालाबों के चारों ओर; गांवों की गोचर भूमियों में; तथा खेती की मेढ़ों पर उचित पद्धति से क्रमवार (Systematically) लगाया हुआ है।

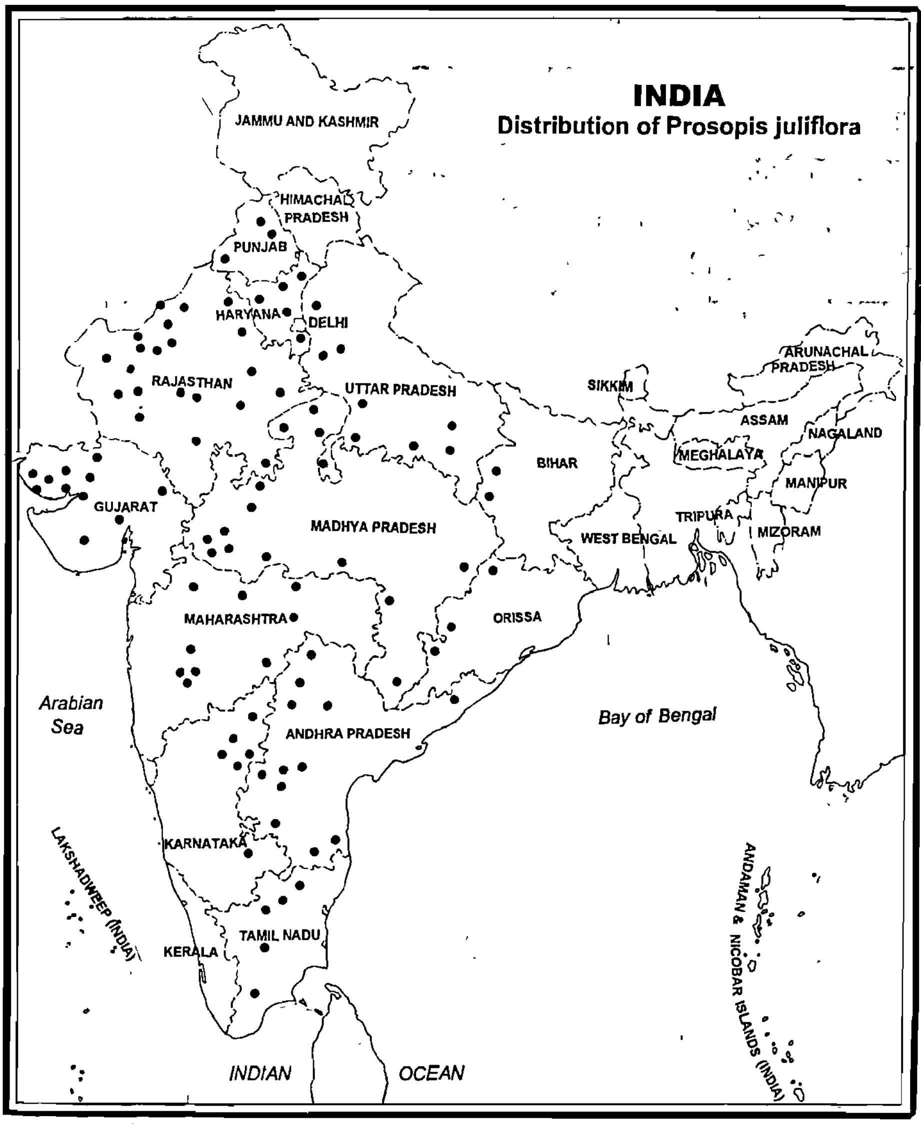


चित्र 2. भारत में विलायती बबूल के वितरण को दर्शाता मानचित्र

### विलायती बबूल का कच्छ क्षेत्र में विस्तार

गुजरात राज्य के वन विभाग ने रण के फैलाव को रोकने हेतु सर्वप्रथम बन्नी चारागाह क्षेत्र में 31,550 हैक्टेयर विलायती बबूल का प्लांटेशन कार्य निष्पादित किया। जिस प्रकार वातावरणीय स्थिति बन्नी क्षेत्र की रही है जैसे, एक के बाद एक अनावृष्टि के वर्ष, बढ़ती हुई लवणता और पशुधन का चारागाहों में अत्यधिक जैविक दाब, उसने विलायती बबूल की वृद्धि व प्रसार के लिए सर्वोत्तम स्थितियाँ पैदा कीं और आज विलायती बबूल इस क्षेत्र की वनस्पति–विन्यास में प्रधान प्रजाति है। वास्तव में यह प्रजाति वितरण, घनत्व एवं अतिक्रमण की दृष्टि से आज इस क्षेत्र में सबसे अग्रणीय है। एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 1980 से 1992 के मध्य 12 वर्षों में, इस क्षेत्र में विलायती बबूल का विस्तार 378 से 684 वर्ग किलोमीटर (लगभग 81 प्रतिशत) तक हो चुका था। सुदूर संवेदन तकनीक से प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट हो चुका है कि बन्नी क्षेत्र में यह प्रजाति 25 वर्ग किलोमीटर प्रतिवर्ष की गति से फैल रही है।

विलायती बबूल प्रायः झाड़ी समूहों (Thickets) के रुप में प्रधानतया परती भूमि एवं क्षरित चारागाहों; नदियों, नहरों, सड़कों एवं रेल पटरियों के किनारे; तथा बंजर भूमि में पाया जाता है। कृषक इस प्रजाति को अपने खेतों में नहीं उगने देते हैं, क्योंकि इसकी नुकीली काँटेयुक्त शाखाएं कृषि कार्यों में बाधक होती हैं और कृषकों का यह भी अनुभव है कि यह प्रजाति फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालती है।

विलायती बबूल के समान गुणों वाली कई विदेशी विशेषतः लेटिन अमरीकी देशों में उगने वाली *प्रोसोपिस* की प्रजातियाँ जैसे *प्रोसोपिस एल्बा, प्रोसोपिस चाइलेन्सिस, प्रोसोपिस ग्लैन्डयुलोसा, प्रोसोपिस फ्लेक्सुओसा, प्रोसोपिस नाइग्रा* एवं *प्रोसोपिस पैलिडा* को भी भारत में लगाया गया है, परन्तु इन प्रजातियों का भारत में प्रवेश का इतिहास कुछ दशक पुराना ही है, आज तक ये प्रजातियाँ प्रायोगिक तौर पर ही शोध व विकास संस्थानों की चार–दिवारी के अन्दर ही हैं।

यह पुस्तक मुख्य रुप से *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* (विलायती बबूल) पर केन्द्रित है। परन्तु जब यह प्रजाति भारत में लगायी जा रही थी, तब कई अन्य विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों जैसे *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस, प्रोसोपिस एल्बा* एवं *प्रोसोपिस पैलिडा* के बीज भी इस प्रजाति के बीजों के साथ मिलकर आ गए। यदि उत्तर–पश्चिम भारत से दूर दक्षिण भारत तक के विलायती बबूल के प्लांटेशन या प्राकृतिक पुनरूत्पादन के फलस्वरुप बने वृक्षों या वन समूहों को ध्यानपूर्वक देखें, तो विलायती बबूल के साथ कुछ छितरे हुए, उक्त वर्णित विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों के वृक्ष भी मिल जाएंगे। *प्रोसोपिस* प्रजातियों की वर्गिकी (Taxanomy) बहुत की पेंचीली व भ्रम में डालने वाली है, अतः विभिन्न प्रजातियों की सही पहचान के लिए उनकी आधारभूत बनावटी गुणों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सब बातों के बीच, एक निर्विवाद सत्य यह है, कि विलायती बबूल आज भारत में प्रमुखता से वितरित काष्ठ प्रजातियों में अपना विशेष स्थान रखता है।

# II. भारत में लगाई गई विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों का परिचय

इस अध्याय का उद्देश्य *प्रोसोपिस* प्रजातियों तथा मुख्य रूप से विलायती बबूल की सही पहचान, संक्षिप्त रूप से वर्णित करना है। भारत में कुछ मुख्य रूप से उगाई गई *प्रोसोपिस* प्रजातियों के प्रमुख गुण इस अध्याय में उधृत किए गए हैं।

*प्रोसोपिस* जाति बहुलता से विश्व में विस्तृत रूप से फैली है। *प्रोसोपिस* की कुल 44 प्रजातियां हैं, जो कंटीले वृक्षों अथवा वृहद झाड़ियों के रूप में पाई जाती हैं। अमेरीका, अफ्रीका तथा एशिया के शुष्क उष्णदेशीय तथा अर्द्ध– शुष्क उष्णदेशीय भागों में *प्रोसोपिस* की प्रजातियाँ बहुलता से वितरित हैं। भारत में लगाई गई विलायती बबूल के अलावा मुख्य रूप से *प्रोसोपिस* प्रजाति, *प्रोसोपिस* सीनिनेरिया (खेजड़ी) है, जो कि भारत उप–महाद्वीप की स्वदेशी प्रजाति है।

भारत में लगाई गई विभिन्न प्रकार की विदेशी *प्रोसोपिस* प्रजातियों को पहचानने के लिए, प्रत्येक जाति के कई पौधों के नमूनों के गुणों का अध्ययन करके पहचाना गया। फिर भी, ये गुण केवल निर्देशन के लिए हैं, क्योंकि प्रत्येक जाति में कई प्रकार की विभिन्नताएं पाई जाती हैं इसलिए, प्रजाति विशेष की पहचान के लिए, कई पौधों के नमूनों का अध्ययन तथा मिलान, उस जाति विशेष के पहचान गुणों से गंभीरतापूर्वक करना आवश्यक है।

©CAZRI

**चित्र 3. एक गांव में घर के पास लगा विलायती बबूल का वृक्ष**

## क. *प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा* (स्वार्ट्ज) डीसी (विलायती बबूल)

### *सामान्य नाम*

मस्कीट तथा हनी मस्कीट (अंग्रेजी– यू.एस.ए.), एल्गारोबो (स्पेनिश–लेटिन अमेरीका), विलायती बबूल (हिन्दी), विलायती खेजड़ा (हिन्दी, मुख्य रूप से हरियाणा), विलायती कीकर (मराठी), अंगरेजी बावलिया (मारवाड़ी), गांडो बावल (गुजराती), बेलारी जारी (तमिल)।

### *प्रमुख गुण*

जिन स्थानों पर यह बहुलता से फैला हुआ है, उन स्थानों पर सामान्यतः यह प्रजाति अति फैली हुई वृहद् झाड़ियों के रूप में पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जैसे ही पौधा 1.0–1.5 मीटर की ऊंचाई तक पहुँचता है और वृद्धि के समय नए कौपिस प्ररोह (Coppice Shoots) निकलते हैं, वैसे ही लोग इसे जलाऊ लकड़ी के रुप में काट लेते हैं। फिर भी, वृक्ष के रुप में इस प्रजाति के पौधे बहुधा पाए जाते हैं। (चित्र 3)

इस प्रजाति में बीज उत्पादन व पुर्नजनन की उच्च क्षमता पायी जाती है, तथा यह प्रजाति अपनी पौध या नवोद्भिद अवस्था (Seedling Stage) में ही सूखे के समय भी पल्लवित होने की क्षमता रखती है, जबकि अन्य सभी प्रजातियाँ उस वातावरण की विपरीत एवं असामान्य परिस्थितियों को सहने में असफल हो जाती हैं। विलायती बबूल, परती भूमि तथा अन्य समान प्रकार की भूमियों में महा सूखे की दशा में भी सफलतापूर्वक स्थापित होकर अपना समुदाय बनाता है।

### *तने एवं पत्तियां*

विलायती बबूल भारत में, सामान्य रुप से घनी झाड़ी समूहों (Thickets) रुप में फैली हुई शाखाओं के साथ बहुधा वितरित हैं। इन झाड़ी समूहों में, एकल झाड़ियों की ऊंचाई भिन्न–भिन्न होती हैं, परन्तु सामान्यतः यह 1 से 3 मीटर के मध्य में होती है। वृक्ष रुप में विलायती बबूल की ऊंचाई 4 से 12 मीटर या इससे भी अधिक होती है। (मुख्य रूप से घाटियों, अधिक नमी वाले क्षेत्रें एवं भली–भांति रक्षित क्षेत्रों में)।

वृक्ष रुप में पाए जाने वाले विलायती बबूल के प्रकारों में सीधे तने (Clear bole) की लंबाई 1 से 3.5 मीटर के बीच पाई जाती है। वृक्ष की छाल 2 से 3 सेन्टिमीटर मोटी व इसका रंग भूरा या कुछ काले रंग लिया हुआ गहरा भूरा होता है। छाल लम्बवत रुप में फुटकर पतली–पतली पट्टियों में विभक्त रहती है। शाखाओं में काँटे होते हैं, जो कि जोड़ी में लगे हुए 5 सेन्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। उप–शाखाएं टेढ़ी–मेढ़ी, बेलनाकार, हरी एवं कंटीली, तथा पत्तियां सदापर्णीय (Persistent) होती हैं। विलायती बबूल के झाड़ी समूहों के यह सब सामान्य गुण हैं। इसकी काष्ठ बहुत ही कठोर होती है।

पत्तियाँ गुच्छे के रुप में शाखाओं के साथ–साथ छोटे प्ररोह (Short Shoots) में लगी हुई होती हैं। ये द्विपक्षाकार (Bipinnate) होती हैं, जिसमें 13–25 जोड़ी उर्ध्व आयताकार (Obliquely Oblong), गहरे रंग के पत्रक (Leaflets), प्रत्येक पक्षवत (Pinna) पर विद्यमान होते हैं (चित्र 5)।

ये पत्रक सामान्यतः 5 से 24 मिलीमीटर लम्बे तथा 1.5 से 5.2 मिलीमीटर चौड़े होते हैं, एवं अक्ष (rachis) के साथ–साथ निश्चित दूरियों में (सामान्यतः अपनी चौड़ाई से अधिक) अवस्थित रहते है।

## *पुष्प*

पुष्पक्रम कक्षीय स्पाइक (axillary spike) प्रकार का होता है। इसकी लम्बाई 8 – 10 सेन्टीमीटर होती है व इसमें पुष्प आच्छादित रहते हैं। पुष्प पहले सफेद रंग लिए हरे होते हैं व विकसित अवस्था में हल्के पीले हो जाते हैं। तीसरे वर्ष की आयु में इस पौधे में फूल लगने प्रारंभ हो जाते हैं। बाह्यदल पुंज (calyx) पांच पत्रीय, 1 मिलीमीटर लम्बे व घंटी संदृश्य (Companulate) होते हैं। दल पुंज (corolla) मुक्त पंचभुजिय (pentamerous), टोमेन्टोज व 1 मिलीमीटर लम्बे होते हैं जिनका आन्तरिक सिरा शीर्ष की ओर होता है। इसमें 5 पुमंग (stamens) होते हैं जो कि 3 से 6 मिलीमीटर लम्बे होते हैं। पौधा वर्ष में तीन बार, अगस्त से सितम्बर; नवम्बर से दिसम्बर; और फरवरी से मार्च में पुष्प उत्पन्न करता है। प्रायः यह पौधा देश के दक्षिणी भागों में उत्तरी भागों से पहले पुष्प धारण कर लेता है। अगस्त से सितम्बर माह में उगने वाले पुष्प, नवम्बर माह के प्रारंभिक दिनों में फल या फलियाँ देना प्रारम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार नवम्बर से दिसम्बर के पुष्पों में फरवरी के अंत से या मार्च प्रारम्भ में फलियाँ प्राप्त होने लगती है। फरवरी–मार्च में लगने वाले पुष्प, मई माह के प्रारम्भ से फलियाँ देना प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार अत्यधिक गर्मी के मौसम (मई) से वर्षा काल के मध्य (अगस्त) के समय को छोड़, यह पौधा पुरे वर्ष पुष्प उत्पन्न करता रहता है।

## *फलियाँ तथा बीज*

फलियाँ साधारण रुप से चपटी और सीधी, परन्तु शीर्ष भाग में अन्दर से मुड़ी रहती हैं। कुछ फलियाँ हंसिए (sickle) के आकार की होती हैं। सामान्यतः फलियाँ 6 से 30 सेन्टिमीटर लम्बी, 5 से 16 मिलीमीटर चौड़ी तथा 4 से 9 मिलीमीटर मोटी होती हैं। आयु के साथ फलियाँ फूल जाती हैं और गूदेदार (Pulpy) पीले भूरे रंग में परिवर्तित हो जाती हैं। कच्ची फलियों में बीजों का आकार दिखाने वाली बाह्य रेखा, फलियों के विकसित होने पर अदृश्य हो जाती हैं। अतः फलभित्ति (endocarp) में 29 गोलीय, चर्तुभुजाकार खण्ड पाए जाते हैं। प्रत्येक खण्ड में एक बीज होता है। बीज कठोर, चपटे, 7 x 4 मिलीमीटर आकार के तथा अण्डीय (ovoid) और चमकीले पीलापन लिए भूरे रंग के होते हैं।

## ख. *प्रोसोपिस पैलिडा* (हमबोल्ट एवं बोन्पलैन्ड एक्स विलडेनाउ) एच.बी.के.

*प्रोसोपिस पैलिडा* पेरू, कोलम्बिया तथा इक्वेडोर का स्वदेशी पौधा है। भारत में इस पौधे को क्रमबद्ध पद्धति से केवल दो दशक पूर्व ही लगाया गया। परन्तु भारत के शुष्क क्षेत्रों में विलायती बबूल के झाड़ी समूहों के बीच इस प्रजाति के कुछ वृक्ष यदा–कदा पाए जाते हैं। इस प्रजाति के कुछ बीज, जब विलायती बबूल को प्रारंभिक वर्षों में भारत में लगाया जा रहा था, उस समय इसके बीजों के ढेरों के साथ मिश्रित हो गए होंगे। जोधपुर (राजस्थान) में, इस पौधे को प्रथम बार प्रयोगात्मक वृक्षारोपण के रूप में सन् 1985 में लगाया गया और दूसरी बार इसका प्रयोगात्मक वृक्षारोपण सन् 1991 में किया गया। इस प्रजाति के अन्य प्रयोगात्मक वृक्षारोपण, करनाल (हरियाणा), लखनऊ (उत्तरप्रदेश) और फाल्टन (महाराष्ट्र) में हैं। यह प्रजाति शुष्क क्षेत्रों के लिए एक उपयोगी छायादार वृक्ष है तथा फलियाँ चारे के रूप में उपयोग में आती हैं।

### *सामान्य नाम*

अलगारोबा, ह्युरान्गो (स्पेनिश–लेटिन अमरीका), पेरूवियन *प्रोसोपिस* (अंग्रेजी)। भारत में वह लोग जो कि *प्रोसोपिस* प्रजातियों में अन्तर कर सकते हैं, इसे बिना कांटे वाला या कांटा रहित विलायती बबूल कहते हैं।

### *प्रमुख गुण*

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में लगाई गई विदेशी *प्रोसोपिस* की प्रजातियों में, *प्रोसोपिस* पैलिडा सबसे उत्तम वृक्ष है। जोधपुर में, दस वर्ष पूर्व लगाए गए इस प्रजाति के प्रयोगात्मक वृक्षारोपण में, कुछ वृक्षों ने 10 मीटर की ऊंचाई प्राप्त कर ली है तथा तने का व्यास मूल सन्धि (collar) पर औसतन 20 सेन्टिमीटर तक पहुँच चुका है। इस प्रजाति के वृक्ष अत्यधिक मात्र में बीजोत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं।

### *तने व पत्तियां*

वृद्धि के लिए अनुकूल एवं सुरक्षित स्थानों में, इस वृक्ष की ऊंचाई 8 से 20 मीटर तक और तने का मूल सन्धि व्यास 60 सेन्टिमीटर तक पहुँच जाता है। भारत में लगाए गए इस वृक्ष के बहुत से समूह सदस्यों (accessions) में कांटे नहीं हैं, इसलिए प्रायः इनको बिना कांटों वाला विलायती बबूल नाम से इंगित किया जाता है। कुछ अन्य पौध प्रकारों में, शाखाओं पर जोड़ी में तथा कक्षीय कांटे होते हैं, जो कि प्रायः 4 सेन्टिमीटर से कम ही लम्बे होते हैं। भारत में इस प्रकार के पौध प्रकारों में काँटें 1 सेन्टिमीटर से भी छोटे हैं। परन्तु अभी तक भारत में लगाए गए अधिकांश वृक्षारोपणों में, इस प्रजाति के वृक्षों में सामान्यतः काँटे नहीं पाए गए हैं।

*प्रोसोपिस पैलिडा* की पत्तियाँ व पत्रक, विलायती बबूल की तुलना में बहुत छोटे होते हैं। इसके प्रत्येक पर्ण में 4 जोड़ी पक्षवत् पाए जाते है (चित्र 6)। परन्तु बहुधा केवल एक ही पक्षवत् पायी जाती है। यह पक्षवत् 1.5 से 6.2 से लम्बी व पत्ती के डण्ठल (petiole)

की संधि पर प्यालेनुमा ग्रन्थि से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक पक्षवत पर 6–15 जोड़ी पत्रक पाए जाते हैं। पत्रक, अक्ष के बहुत समीप ही व्यवस्थित रहते हैं, परन्तु वे किसी भी बिन्दु पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते हैं। पत्रक आयताकार से अण्डाकार और 2.4 से 8 मिलीमीटर लम्बे तथा 1.2 से 4 मिलीमीटर चौड़े होते हैं। फल व फूल लगभग विलायती बबूल के समान ही होते हैं।

©G Cruz

चित्र **4. प्रोसोपिस पैलिडा की फलियों में बीजों का विन्यास**

## *फलियाँ तथा बीज*

फलियों का रंग भूसे के समान पीला होता है। ये सीधी या मुड़ी हुई तथा विलायती बबूल की फलियों से मिलती–जुलती हैं, परन्तु ये अपेक्षाकृत मोटी होती हैं। फलियाँ 9 से 24 सेन्टिमीटर लम्बी, 1 से 1.4 सेन्टिमीटर चौड़ी तथा 5 से 9 मिलीमीटर मोटी होती हैं। फलियों के खण्ड लम्बाई की तुलना में अधिक चौड़े होते हैं। प्रत्येक फली में लगभग 28 आयताकार बीज होते हैं। बीज भूरे रंग के होते हैं तथा इनकी लम्बाई लगभग 6 मिलीमीटर होती है। (चित्र 4)

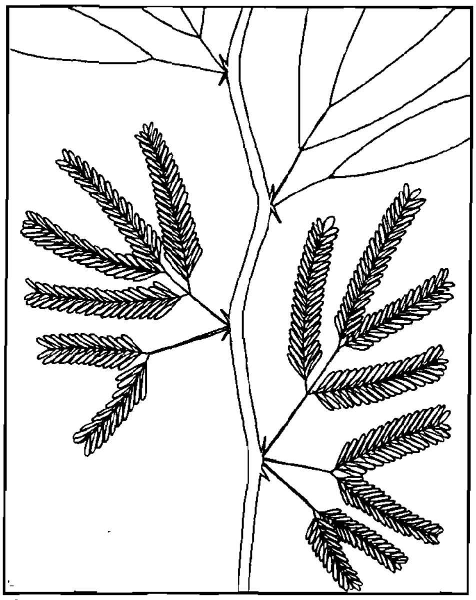

चित्र 5. *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा*

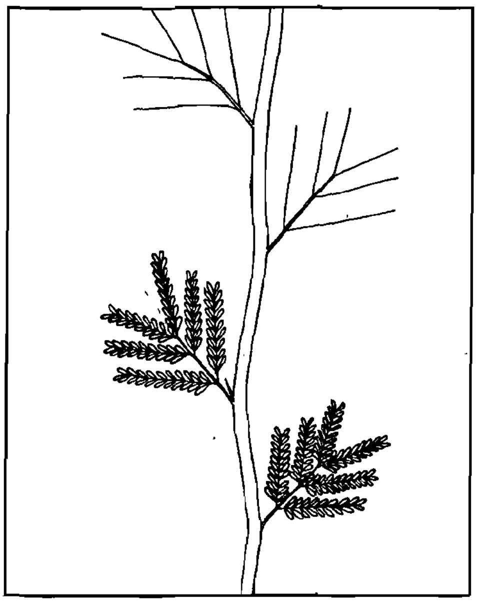

चित्र 6. *प्रोसोपिस पैलिडा*

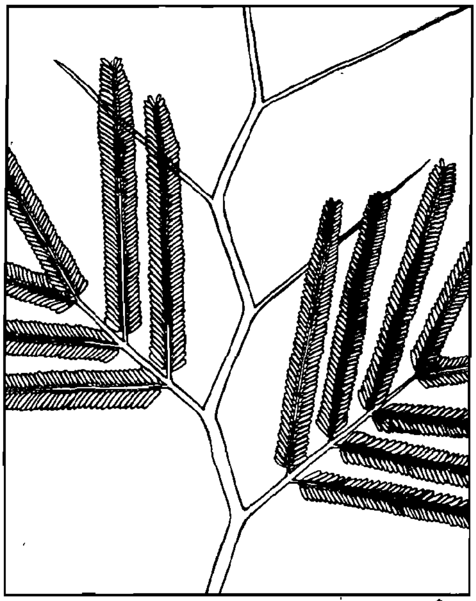

चित्र 7. *प्रोसोपिस एल्बा*

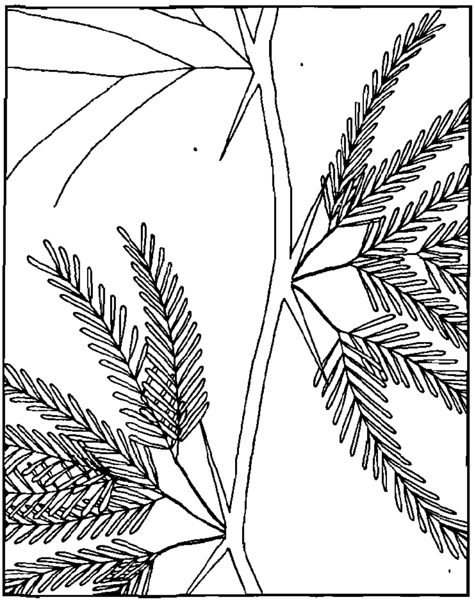

चित्र 8. *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस*

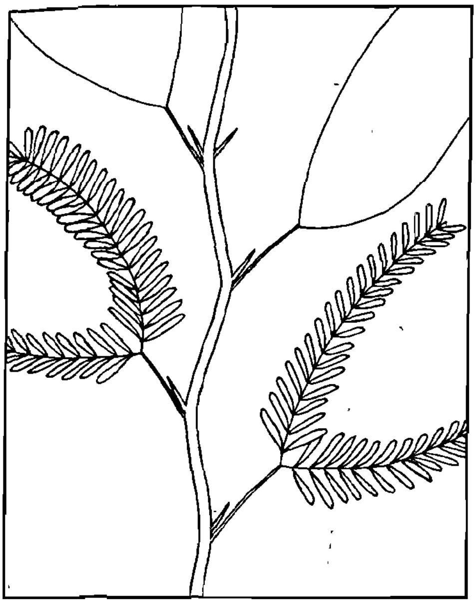

चित्र 9. *प्रोसोपिस ग्लेन्ड्युलोसा*

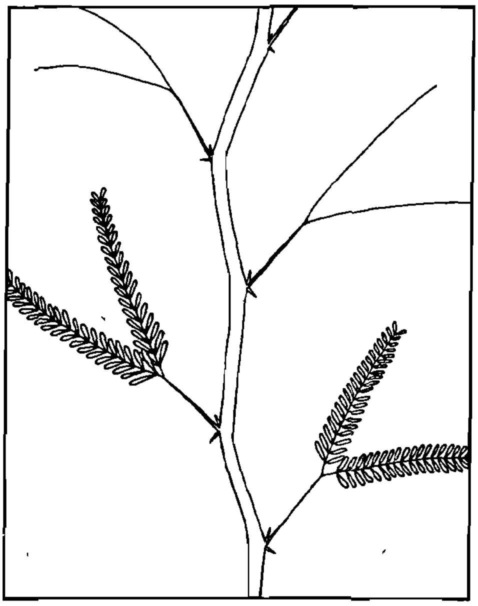

चित्र 10. *प्रोसोपिस फ्लैक्सुओसा*

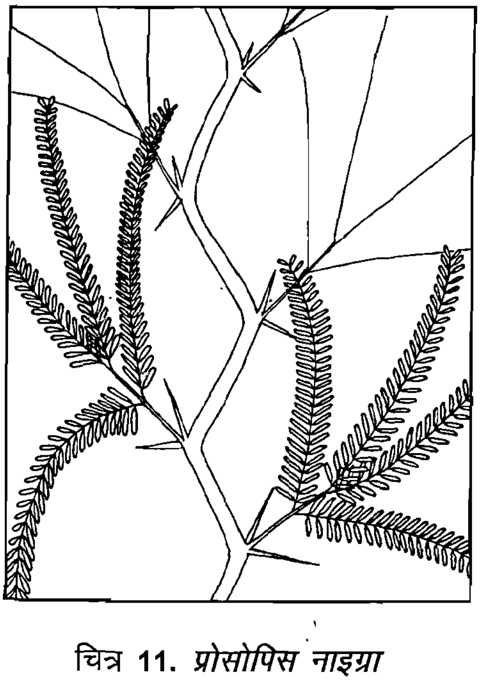

चित्र 11. *प्रोसोपिस नाइग्रा*

## ग. *प्रोसोपिस एल्बा* (गिसबैक)

| | |
|---|---|
| सामान्य नाम | अल्गारोबो बेल्नको (स्पेनिश–लेटिन अमेरीका), एल्बा (भारत) |
| रूप और आकार | वृक्ष रूप 7 से 15 मीटर ऊंचा तथा 45 से 46 सेन्टिमीटर तक तने का व्यास। |
| पत्तियाँ | पत्रक बहुत से पक्षवतों के साथ, विलायती बबूल की तुलना में बहुत छोटे तथा प्रत्येक पर्ण पर 3 से 4 जोड़ी पक्षवत पाये जाते हैं। |
| काँट | कठोर अनुपत्र (Stipules), जोड़ीदार छोटे व न्यूनतम होते हैं, और बलिष्ठ शाखाओं पर पाये जाते हैं। कांटे रहित वृक्ष भी पाए गए हैं। |
| फलियाँ | हँसिया या अंगूठी के आकार की, भूसे के समान पीले रंग की, सीधी तथा सिकुड़ी हुई तथा समानान्तर किनारा, 10 से 23 सेन्टिमीटर लम्बी; 8 से 20 मिलीमीटर चौड़ी; तथा 4 से 5 मिलीमीटर मोटी तथा 12 से 30 अन्तःफल भित्ति खंड, जो कि चौड़े अधिक व लम्बे कम होते हैं। |
| व्याख्या | फलियाँ मीठी और पशुधन के लिए श्रेष्ठ आहार बनाती हैं। |

*प्रोसोपिस एल्बा* को भारत में 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में जोधपुर (राजस्थान) में लगाया गया था। साथ ही साथ इसको कुछ अन्य क्षेत्रों में भी लगाया गया, जैसे करनाल (हरियाणा), लखनऊ (उत्तरप्रदेश) और फल्टन (महाराष्ट्र)। यह प्रजाति ज्यादा विस्तारित तो नहीं है, फिर भी यह प्रजाति क्रमिक रूप से राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उनके अपने स्वयं के वन विभागों के सुनियोजित वृक्षारोपण द्वारा फैल रही है (चित्र 7)।

## घ. *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* (मोलीना) स्टंट्ज एमेन्ड बुरकार्ट

| | |
|---|---|
| सामान्य नाम | अल्गारोबो ब्लेंको (स्पेनिश–लेटिन अमरीका), विलायती बबूल (हिन्दी–भारत), विलायती बबूल शब्द *प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा* व *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* दोनों को समझाने के लिए भारत में उपयोग में लिया जाता है। |
| रूप और आकार | सुरक्षित स्थानों पर वृक्ष के रूप में व बिना प्रबन्धन के झाड़ी के रूप में पाया जाता है। वृक्ष रूप में ऊंचाई 5 से 11 मीटर के मध्य। |
| पत्तियाँ | विलायती बबूल की तुलना में पत्रक बड़े, ज्यादा फैले हुए और लम्बे अक्ष पर लगे रहते हैं। सामान्यतः केवल 1 जोड़ी पक्षवत प्रत्येक पर्ण पर पाया जाता है। |
| शाखाएं | कोमल, गांठदार जिगजांग (z) और कंटीली होती है। |
| काँटे | काँटे जोड़ीदार तथा कक्षीय, और लगभग 6-7 सेन्टिमीटर लम्बे होते हैं। परन्तु सभी गांठों पर नहीं पाए जाते हैं। |
| फलियाँ | सीधी या हँसिये के आकार में, दबी हुई तथा 10 से 16 सेन्टिमीटर लम्बी, 1 से 0.5 सेन्टिमीटर चौड़ी और 0.4 से 0.5 सेन्टिमीटर मोटी है। फलियों के किनारे समानान्तर होते हैं। |
| व्याख्या | वृक्ष कभी–कभी पतझड़वाले (deciduous) होते हैं। फलियाँ श्रेष्ठ चारे के रूप में तथा काष्ठ निर्माण कार्यो में उपयोगी है। |

*प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* प्रायः विलायती बबूल के साथ–साथ पाया जाता है। ऐसा शायद इसलिए हुआ होगा जब विलायती बबूल को भारत में प्रारंभिक वर्षों में लगाया गया, तब उसके बीजों के साथ, इस प्रजाति के बीज मिश्रित हो गए। पिछले बीस सालों में *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* के कुछ वृक्षारोपण जोधपुर (राजस्थान), लखनऊ (उत्तरप्रदेश), करनाल (हरियाणा) तथा फल्टन (महाराष्ट्र) में लगाए गए हैं। *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* का नाम विलायती बबूल को समझाने के लिए बहुधा दुरूपयोग में ले लिया जाता है चित्र 8।

## ड. *प्रोसोपिस ग्लेन्ड्युलोसा*

| | |
|---|---|
| सामान्य नाम | हनी मस्कीट (अंग्रेजी–यू.एस.ए.), विलायती कीकर (पंजाबी) |
| रूप और आकार | झाड़ीनुमा, परन्तु अच्छे प्रबन्धन से वृक्ष का रूप दिया जा सकता है। वृक्ष रूप में बहुधा 3 से 9 मीटर तक ऊंचा। |
| पत्तियाँ | पत्रक लम्बे तथा चौड़े, *प्रोसोपिस चाइलेन्सिस* के समान। |
| काँटे | कक्षीय और 1 से 4.5 सेन्टिमीटर लम्बे होते हैं। सामान्यतः कॉटे एकल होते हैं, परन्तु कुछ सदस्यों में जोड़ी के रूप में भी पाए जाते हैं। |
| फलियाँ | मुड़ी हुई या सीधी, लम्बी व चपटी, पीली 8 से 20 सेन्टिमीटर लम्बी; 0.9 से 1.4 सेन्टिमीटर चौड़ी; तथा 0.4 से 0.7 सेन्टिमीटर मोटी, *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* के समान होती है। |
| व्याख्या | फलियाँ अच्छे चारे तथा काष्ठ जलाऊ लकड़ी के रूप में अति उपयोगी। मधुमक्खियों के लिए अमृत से श्रेष्ठ पुष्प रस का स्रोत। वृक्ष पतझड़ (deciduous) वाले होते हैं। |

*प्रोसोपिस* ग्लैन्ड्युलोसा, भारत में सन् 1990 के पूर्व में लगाया गया था। प्रजाति के प्रयोगात्मक वृक्षारोपण जोधपुर (राजस्थान), फाल्टन (महाराष्ट्र) और लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में स्थित है (चित्र 9)। अनुकूलित होकर, प्राकृतिक रुप में इस प्रजाति के वृक्ष विलायती बबूल के साथ–साथ विशेषकर राजस्थान के ब्यावर एवं हरियाणा में पाए जाते हैं।

## च. *प्रोसोपिस फ्लैक्सुओसा*

| | |
|---|---|
| सामान्य नाम | अल्गारोबा (स्पेनिश–चिली), लमारो (स्पेनिश–अर्जेन्टीना) |
| रूप और आकार | उच्च क्षीर्षयी (erect) झाड़ी रूप में, परन्तु सुरक्षित स्थानों में, सही प्रबन्धन के साथ यह वृक्ष का रूप ले सकता है। झाड़ी 3 से 5 मीटर ऊँची व वृक्ष 10 मीटर तक ऊंचे होते हैं। |
| पत्तियाँ | पत्रक विलायती बबूल की तुलना में छोटे होते हैं। इसके पर्ण में एक जोड़ी पक्षवत पाए जाते हैं। |
| शाखाएं | टेढ़े–मेढ़े रूप में, अन्ततः छोटी–छोटी शाखाओं में विभक्त हो जाती है। |
| काँटे | काँटे छोटे या लगभग अनुपस्थित होते हैं। यदि काँटे हों तो वह हल्के पीले या पीले रंग के, कक्षीय तथा जोड़ी में व्यवस्थित होते हैं। काँटे 3–5 सेन्टिमीटर लम्बे होते हैं। |
| फलियाँ | प्रायः सीधी परन्तु कभी–कभी मुड़ी हुई, रंग हल्के काले–बैंगनी वर्ण के साथ पीला होता है। फली गूदा मीठा होता है। फलियों की लम्बाई 5 से 28 सेन्टिमीटर व चौड़ाई 0.7 से 1.2 सेन्टिमीटर होती है। फलियों के किनारे टेढ़े–मेढ़े होते हैं। |
| व्याख्या | वृक्ष पतझड़ वाले होते हैं। इसकी फलियाँ अच्छा चारा हैं व काष्ठ जलाऊ लकड़ी के रूप में तथा घरों में फर्श निर्माण में उपयोगी हैं। |

*प्रोसोपिस फ्लैक्सुओसा* उत्तरी चिली में पाया जाता है। इसका प्रवेश हाल ही में भारत में हुआ है। इसको 1990 के दशक में जोधपुर तथा करनाल में लगाया गया (चित्र 10)।

## छ. *प्रोसोपिस नाइग्रा* (ग्रिसबैक) हीरोनाइमस

| | |
|---|---|
| सामान्य नाम | अल्गारोबो निग्रो (स्पेनिश—अर्जेन्टीना), काला विलायती कीकर (हिन्दी—भारत) |
| रूप और आकार | वृक्ष रूप में 4 से 10 मीटर ऊंचा। तने में गहरी रंग की छाल लम्बवत रूप में फटकर पतली—पतली पट्टियों में विभक्त रहती है। |
| पत्तियाँ | इस प्रजाति में पत्रक छोटे—छोटे, *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* के समान होते हैं। इसमें सामान्यतः दो जोड़ी पक्षवत प्रत्येक पर्ण पर होते हैं जो कि अन्य *प्रोसोपिस* प्रजातियों की तुलना में अधिक लम्बे होते हैं। |
| शाखाएं | कोमलीय और उच्च शीर्ष वाली लम्बी शाखाएं अत्यधिक कंटीली होती है। अन्ततः उपशाखाएं नीचे की ओर मुड़ी हुई और लगभग कांटों रहित होती है। |
| काँटे | 0.4 से 3.4 सेन्टिमीटर लम्बे होते हैं। |
| फलियाँ | विकसित फलियाँ हल्के बैंगनी रंग लिए, पीले रंग की होती हैं। यह मोटी तथा मांसल, 10 से 15 सेन्टिमीटर लम्बी और 0.5 से 0.9 सेन्टिमीटर चौड़ी होती है। |
| व्याख्याएं | उपयोगी काष्ठीय वृक्ष। फलियाँ बहुत मीठी होती हैं व पशु आहार के लिए उत्तम है। |

*प्रोसोपिस* नाइग्रा बोलाविया, अर्जेन्टीना और पेरागुए का स्वदेशी पौधा है। इसको पंद्रह साल पहले भारत में लगाया गया था (चित्र 11)।

# III. फलियों का संग्रहण, भंडारण एवं बीजों का निस्सारण

इस अध्याय में फलियों के संग्रहण से लेकर बीज निकालने तक की जो विधियाँ वर्णित की गई है, वह सरलता से क्रियान्वित की जा सकती हैं। नर्सरी लगाने वाले व्यक्ति, चाहे वह कृषक हो या किसी सरकारी विभाग (जैसे कृषि/वन विभाग इत्यादि), गैर–सरकारी संस्थाओं व कंपनियों में नर्सरी प्रबंधक हों या इस क्षेत्र में नया–नया आया हुआ व्यक्ति हो, सुगमता से अच्छें गुणों वाला विलायती बबूल का बीज प्राप्त कर सकता है। इस अध्याय में इस कार्य विशेष के लिए क्रमबद्ध विधियाँ वर्णित की गयी हैं जिनका ज्ञान नर्सरी में उत्तम पौध (Seeding) उगाने के लिए आवश्यक है। यद्यपि, यहाँ केवल विलायती बबूल के संदर्भ में ही संबंधित विधियों का वर्णन किया गया है, किन्तु उक्त विधियाँ किसी भी अन्य देशों से भारत में लाई गई प्रोसोपिस प्रजाति के संदर्भ में भी समान रुप से उपयोग में लाई जा सकती हैं।

## क. बीजों के लिए फलियों का संग्रहण

यद्यपि नवम्बर माह से मई माह तक विलायती बबूल के वृक्षों में फलियाँ लगी रहती हैं, इसलिए वृक्षों का छत्र (Crown) नवम्बर से दिसम्बर एवं मार्च से मई तक पकी हुई फलियों से लदे रहते हैं (चित्र 12 एवं 13)।

### *वृक्ष से फलियों का एकत्रण*

यदि फलियों को रोपण हेतु उपयोग करना हो तो उन्हें ऐसे वृक्षों से एकत्रित करना चाहिए जो कि वांछित गुणों हेतु चयनित किए गए हो। जैसे – सीधा आकार, अधिक फली उत्पादन तथा कंटक हीनता या बहुत थोड़े कांटे। नवम्बर–दिसम्बर व मार्च–अप्रैल का समय फली एकत्रण हेतु सर्वोत्तम होता है।

इसकी फलियों को निम्न प्रकार से एकत्रित किया जा सकता है–

- हाथ से शाखा हिलाकर (डंडा या रस्सी विधि)
- हाथ से शाखा हिलाना व काटना

**हाथ से शाखा हिलाकर (डंडा या रस्सी विधि)** – पकी हुई फलियों के एकत्रण के लिए उपयोगी विधि है तथा इसकी झाड़ीनुमा प्रजातियों में यह व्यवहारिक भी है किंतु कांटे होने के कारण शाखाओं को हाथ से नहीं हिलाया जा सकता है अतः डंडे व रस्सी को शाखाओं पर फैंक कर उन्हें हिलाया जाता है।

भारत में इसके बीज एकत्रण की सर्वाधिक प्रचलित विधि में हाथ से हिलाना व कटाई का सम्मिलित प्रयोग है। इसमें बाँस के 6–8 मीटर लम्बे डंडे के अग्र भाग पर दंराती लगी होती है। सीधे वृक्ष के मध्य भाग से बीज एकत्रण के लिए दंराती को शाखा पर लगाकर जोर से झटका देते हैं जिससे पकी फलियाँ नीचे गिर जाती हैं। ऊपरी भाग से बीज गिराने के लिए दंराती के पिछले भाग से उन्हें कई बार पीटने पर फलियाँ नीचे गिर जाती हैं।

चित्र 12. दिसम्बर में फलियों से लदा हुआ विलायती बबूल का छत्र।

चित्र 13. विलायती बबूल की फलियों का गुच्छा।

फलियाँ गिराने से पहले जमीन पर कैनवास कपड़ा बिछा देना चाहिए। इसके बाद गिरी हुई फलियों को सामान्यतः 5–10 किलो या 15-30 किलो के अनुसार बोरियों में रख दिया जाता है। बोरियाँ भरते समय कच्ची व रोगयुक्त फलियों को अलग कर फैंक दिया जाता है।

## *प्राकृतिक रुप से गिरी हुई फलियाँ*

प्राकृतिक रुप से गिरी फलियों का भी संग्रहण किया जा सकता है किंतु उसकी जीवन क्षमता निम्न कारणों से कम हो सकती है –

- गाय, भेड़, बकरी व अन्य जानवर इन्हें खाकर नुकसान पहुँचा सकते है।
- बीज को खाने वाले कीट भी क्षति पहुँचा सकते है।
- नम सतह पर पड़ी फलियों को फफूँदी से भी नुकसान हो सकता है।

यदि फलियों को जमीन से एकत्रित किया जाये तो निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

**फली आकार :**

केवल स्वस्थ व ऐसी फलियाँ जिनकी लम्बाई 10 सेमी व चौड़ाई 0.5 सेमी से अधिक हो या मध्यभित्ति पर्याप्त मोटी हो, का ही संग्रहण करना चाहिए।

**संग्रहण समय :**

पहले गिरने वाली फलियाँ अक्सर निम्न गुण वाली होती हैं। अतः नवम्बर के अंत से संग्रहण शुरू करना चाहिए।

**नुकसान :**

कीट, पक्षी, जानवर या फफूँदी के कारण क्षति हुई फलियों का संग्रहण नहीं करना चाहिए, चाहे क्षति मामूली ही हो। फली पर छोटे गोल छिद्र जिनसे बुरादा या गूदा निकल रहा हो, बुर्किड नामक कीट की क्षति होती है। इन फलियों का संग्रहण न करके पशुओं को खिलाया जा सकता है।

## ख. फलियाँ सुखाना व भंडारण

संग्रहण के बाद फलियों को भंडार गृह या नर्सरी में लाया जाता है और उसमें से कचरा निकालकर गुच्छे में लगी फलियों को अलग–अलग कर लिया जाता है।

### *सुखाना*

फलियों को धूप में सुखाना सर्वाधिक प्रचलित विधि है। फलियों को सूर्योदय होने पर जमीन पर फैला दिया जाता है व सूर्यास्त होने पर पुनः बोरों में भर दिया जाता है। मार्च से मई का तापमान अधिक होने के कारण फलियों को छाया में सुखाया जाता है। इस प्रक्रिया को 4–5 दिन या तब तक दोहराया जाता है जब तक नमी 6–10% तक ना आ जाए।

***सावधानी :*** **फलियों को सदैव साफ व अच्छी धूप में ही सुखाना चाहिए। यदि बादल या अधिक नमी में सुखाया जाता है तो फलियों द्वारा पुनः नमी सोख लेने की संभावना रहती है।**

### *भंडारण*

सूखे के बाद फलियॉ भंडारण के लिए तैयार हो जाती हैं। भंडारण से पहले फलियों पर कीट, फफूँदी की हानि की जाँच कर लेनी चाहिए जो कि सुखाने के दौरान हो सकती है। क्षतिग्रस्त फलियों को फैंक देना चाहिए ताकि भंडारण के दौरान अन्य फलियों में कीट–फफूँदी न फैल सके।

कीटों से बचाव के लिए फलियों को उपचारित करने की संस्तुति की जाती है। नीम का उपयोग एक पारंपरिक व प्रभावकारी तरीका है। इसके बावजूद समस्या होने पर विशेषज्ञ की सलाह लेनी चाहिए।

## भंडारण में क्षति नियंत्रण हेतु नीम का प्रयोग

नीम का उपयोग भंडारित फली व बीज की रक्षा के लिए कई प्रकार से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि फलियों का भंडारण किसी पात्र में करना हो तो पात्र के पेंदे में 1.5 सेमी की नीम की सूखी पत्तियों की परत लगाकर फिर सूखी फलियों की 30 सेमी ऊँची परत लगा देने के बाद पुनः नीम की पत्तियों की परत लगा देते हैं। यह क्रम पात्र भरने तक जारी रहता है तथा अंत में नीम की पत्ती की परत लगाकर पात्र बंद कर देते हैं।

यदि फलियों को बोरों में भंडारित करना हो तो नीम पत्ती का पाउडर 1–2 किलो प्रति 100 किलो फली की दर से सीधे ही मिलाकर या 2–3 मि.ली. नीम तेल प्रति किलो बीज में मिलाकर भंडारित कर देते हैं।

सूखी फलियों को 2–3 वर्ष तक भंडारित किया जा सकता है। भंडारण निम्न में से कोई एक विधि द्वारा किया जा सकता है जो कि सुलभता व साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

- वायु रोधक लोहे या एल्युमिनियम के 20–25 किलो क्षमता वाले पात्र
- जूट के (70x10 सेमी), 40–50 किलो क्षमता के बोरे
- मिट्टी व घॉस–फूँस के छप्पर से बने 1–1.5 टन क्षमता के भंडारण कक्ष।

## फलियों का चारे के लिए प्रयोग

भारत में इसकी फलियों का लम्बे समय तक भंडारण नहीं किया जाता है क्योंकि अन्य चारे भी उपलब्ध रहते हैं। अधिकतम फलियाँ आने के समय ही 4–5 दिन के उपयोग के लायक ही एकत्रण किया जाता है तथा समाप्त होने पर पुनः एकत्रित कर लिया जाता है। चूँकि फलियाँ नवम्बर से मई तक लगातार आती रहती हैं, इसलिए सामान्यतः गाय, बकरी, भेड़ आदि स्वयं टूटकर गिरी या शाखाओं को हिलाकर गिराई फलियों को तुरंत ही खाते रहते हैं।

दक्षिण अमेरिका में इसकी फलियों को इकट्ठा कर भंडारित किया जाता है। बाद में इन्हें या तो बेच दिया जाता है या चारे की कमी की स्थिति में उपयोग किया जाता है।

## ग. बीजों का निस्सारण

फली के अंदर बीज गूदेदार साँचे में बिछे रहते हैं तथा प्रत्येक बीज अलग कक्ष में होता है। बीज के चारों ओर अपारगम्य झिल्ली होती है। फलियों को खंडित करके प्रवर्धन किया जा सकता है किन्तु बीज का अंकुरण बहुत कम होता है।

अच्छे अंकुरण के लिए बीज का साफ व शुद्ध होना आवश्यक है। सुलभता व साधनों की उपलब्धता के अनुसार निम्न विधियाँ अच्छे अंकुरण हेतु अपनाई जाती है।

- फलियों को पशुओं को खिलाना
- यांत्रिक विधियाँ
- यांत्रिक–रासायनिक विधि

### *फलियों को पशुओं को खिलाना*

संग्रहित फलियों को गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि पशुओं को पशुशाला में खिलाया जाता है। मल में निकले बीजों को अच्छी तरह धो लिया जाता है (चित्र 14 एवं 15)। पशुओं की आहार नाल से गुजरते समय बीज पर हुई हल्की अम्लीय क्रिया अंकुरण में सहायक होती है किन्तु

- इस प्रकार के बीजों का नर्सरी में अक्सर अंकुरण 40 फीसदी से भी कम होता है।
- अधिक मात्रा में बीजों की जरूरत होने पर यह विधि व्यवहारिक नहीं है।

©CAZRI

चित्र **14.** विलायती बबूल की फलियों को खाता हुआ गधा।

©CAZRI

चित्र **15.** जमीन पर पड़े गोबर में विलायती बबूल के फैले हुए बीज।

## *यांत्रिक विधियाँ*

फली से बीज निकालने की कुछ विधियाँ उपलब्ध हैं लेकिन उनका देश में अधिक उपयोग नहीं होता है सिर्फ कुछ शोध संस्थानों व राज्य वन विभागों की पौधशालाओं में ही यह उपलब्ध है।

### बीज निष्कर्षण के लिए यंत्र का उपयोग

साफ बीज प्राप्त करने में माँस पीसने की मशीन का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा चुका है। इसके लिए 9.5 मि.मी. छिद्रों वाली अंतिम प्लेट मशीन में लगाकर सूखी फलियों को पीसा जाता है जिससे लगभग 20 प्रतिशत बीज निकल आते हैं। फिर इस प्लेट को हटाकर 6.35 मि.मी. छिद्र वाली प्लेट लगाकर पुनः पिसाई की जाती है जिससे मध्य भित्ति से ढके 80 प्रतिशत बीज भी साफ होकर बाहर आ जाते हैं। यह विधि मध्य आकार की नर्सरी के लिए उपयोगी है जहाँ इससे लगभग 7000 साफ बीज प्रति घंटा निकाले जा सकते हैं। माँस पीसने की मशीन आसानी से बाजार में मिल जाती है यथा उपयुक्त छिद्र वाली प्लेट, लोहे के कार्य के छोटे से कारखाने में बनाई जा सकती है।

## *यांत्रिक–रसायनिक विधि*

अधिक मात्रा में साफ बीज निष्कर्षण की यह सबसे अधिक प्रचलित विधि है। देश में विलायती बबूल के उगने के लगभग सभी स्थानों पर इसका उपयोग होता है। यह पौध बनाने वाले व किसानों दोनों के लिए उपयोगी है। इसमें यांत्रिक व रासायनिक दोनों क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। इसके निम्न चरण होते हैं –

1. लकड़ी के हथौड़े से बार–बार पीटकर फलियों के टुकड़े करना।
2. शर्करायुक्त मध्यभित्ति से बीज को अलग करने के लिए फली के टुकड़ों को 2–3 % नमक के अम्ल या 1 प्रतिशत कास्टिक सोडे के घोल में 24 घंटे भिगोना।
3. बीजों को अच्छी तरह पानी में धोकर पूरे दिन धूप में सुखाना।
4. अगले दिन इन सूखे बीजों पर ट्रेक्टर चलाकर बीज को खोल से अलग करना।

# IV. नर्सरी में विलायती बबूल की पौध तैयार करना

विलायती बबूल की पौध नर्सरी में मुख्य रूप से बीज द्वारा ही तैयार की जाती है। इसके अलावा इसे शाखा काटकर भी तैयार किया जा सकता है, परन्तु बीज द्वारा पौध तैयार करना सरल व सस्ता होता है। शुद्ध बीज निकालने की विधि का वर्णन अध्याय 3 में किया गया है। इस अध्याय में पौधशाला लगाने से सम्बन्धित जानकारी तथा पौधशाला लगाने वालों के लिए आवश्यक ध्यान रखने योग्य बातें बताई गई है।

## क. बीज का पूर्वोपचार

विलायती बबूल के बीज का ऊपरी खोल (seed coat) बड़ा सख्त होता है और इस कारण बीज आसानी से पानी नहीं सोख पाता है जोकि अंकुरण के लिए महत्वपूर्ण होता है इसलिए यह जरूरी है कि बीज का सख्त खोल तोड़ा जाए जिससे बीज पानी को अच्छी तरह से सोख सके। बीज के सख्त खोल को तोड़ने की प्रक्रिया को पूर्वोपचार करते हैं।

बीज का पूर्वोपचार विभिन्न विधियों से किया जा सकता है जो कि नर्सरियों की परिस्थिति के अनुसार किया जाता है।

मुख्य रूप से तीन प्रकार से बीजों का पूर्वोपचार किया जाता है।

- यांत्रिक विधि
- रसायनिक विधि
- गर्म अथवा उबला पानी

## यांत्रिक विधि

इस विधि में यांत्रिक उपकरण द्वारा या किसी भी उपकरण द्वारा सख्त बीज खोल को इस प्रकार तोड़ा जाता है कि जिसमें सख्त बीजावरण में कई छिद्र हो जाये अथवा उसका कुछ अंश टूट जाये और उसमें पानी तथा वायु मिश्रण का बीज में आसानी से आदान–प्रदान हो सके जिससे बीज जल्द या अधिक मात्रा में अंकुरित हो सके।

सख्त बीज के आवरण को विभिन्न प्रकार से तोड़ा जा सकता है जैसे रेगमाल (sand paper) से बीज को रगड़कर आवरण में छोटे–छोटे छिद्र किए जा सके, नाखून काटने वाले यंत्र (nail cutter) से बीज के किसी भी किनारे को हल्का सा छिद्र करना। इन सभी में यह ध्यान रखना जरूरी है कि भ्रूणकोष नष्ट नहीं होने पाए।

**रेगमाल द्वारा :** रेगमाल पर बीज रखकर उसको अच्छी तरह घिसना (rub) चाहिए जिससे बीज के आवरण में हल्की धारियाँ पड़ जाएं (चित्र 16)।

चाकू द्वारा : अच्छी धार वाले चाकू से अथवा नाखून काटने वाले चाकू द्वारा बीज के किसी भी किनारे को हल्के से काटने से भी बीज का पूर्वोपचार हो सकता है।

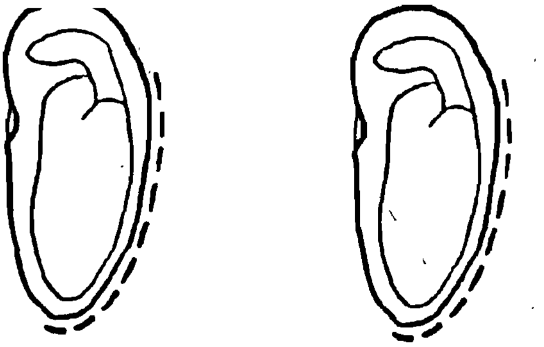

**चित्र 16. विलायती बबूल का दर्शाया गया बीज जहाँ से बीजावरण को सही रुप में उपचारित किया जा सकता है। (स्रोत : एनएफटीए)**

गर्म सुई द्वारा : लोहे की अथवा स्टील की नुकीली सुई को खूब गर्म कर (Red hot) बीज के किसी किनारे पर छिद्र किया जाता है। इस विधि से 2 से 5 हजार तक बीज एक घंटे में उपचारित किए जा सकते हैं।

## रसायन द्वारा

यांत्रिक विधि द्वारा बीजों का पूर्वापचार करने में बहुत समय लगता है तथा जहाँ हजारों या लाखों पौधे तैयार करने होते हैं वहाँ पर यह विधि उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए अधिक मात्रा में बीजों को गंधक के तनु अम्ल से पूर्वापचारित किया जाता है।

इस विधि से अधिक से अधिक बीजों को उपचारित किया जा सकता है तथा उपचारित बीज 80 से 90 प्रतिशत तक अंकुरित हो जाते हैं।

**सावधानियाँ**–बीजों को तेजाब से उपचार करने के लिए बहुत सी सावधानियाँ रखनी पड़ती है, जैसे–

- **इस विधि से बीज का उपचार अनुभवी व्यक्ति द्वारा ही करना चाहिए, क्योंकि अगर बीज तेजाब में अधिक समय रह जाता है तो बीज जल सकता है।**
- तेजाब से कपड़े अथवा त्वचा जल सकती है अतः ध्यान रखना बहुत ही जरूरी है।
- तेजाब में कभी भी पानी नहीं डालना चाहिए। पानी में तेजाब धीरे–धीरे डालना चाहिए।
- कार्यकर्ता को सावधानी के लिए हाथ में रबड़ के दस्तानें को पहनने चाहिए। जिससे त्वचा सीधी तेजाब संपर्क में नहीं आए।

गंधक के अम्ल द्वारा बीजों का उपचार निम्न प्रकार से किया जाता है –

1. सर्वप्रथम जिन बीजों को उपचारित करना हो उन्हें लोहे की तगारी (60–70 सेमी व्यास तथा 10 सेमी गहराई) में रखना चाहिए।

2. अब इन बीजों पर बूंद–बूंद करके अम्ल डालना चाहिए तथा बीजों को लकड़ी अथवा लोहे की छड़ से सावधानीपूर्वक हिलाते रहना चाहिए जिससे अम्ल सभी बीजों के आवरण के चारों तरफ फैल जाए। लगभग एक किलो बीज के लिए 0.5 लीटर अम्ल पर्याप्त होता है।

3. बीजों को हिलाते समय पूर्ण ध्यान रखना चाहिए एवं जब सभी बीज पूर्ण रुप से अम्ल द्वारा संतृप्त हो जाये तो अम्ल डालना बंद कर केवल उसे हिलाते रहना चाहिए साथ ही समय–समय पर कुछ बीजों को बाहर निकालकर पानी से साफ करके उन्हें देखते रहना चाहिए कि बीजों के आवरण में हल्की धारियाँ तो नहीं दिखाई दे रही है।

4. इस प्रक्रिया में गर्मी के माह में जब वायु का तापमान अधिक होता है, 5–8 मिनट लगते हैं जबकि ठण्ड में इसमें 10–15 मिनट का समय लगता है।

5. जैसे ही बीज खोल में हल्की धारियाँ दिखाई देने लग जाय, बीज को हिलाना बंद कर देना चाहिए एवं इसे पानी से भरी बाल्टी में डाल देना चाहिए।

6. बीजों को अच्छी तरह पानी से 2–3 बार धोकर तेजाब रहित कर लेना चाहिए।

7. अच्छी तरह से बीज को धो लेने के पश्चात उनको किसी कपड़े पर या पक्के फर्श पर हवा में सुखा देना चाहिए तथा सूखे हुए बीजों को इकट्ठा कर लेना चाहिए।

## गर्म अथवा उबलते हुए पानी से उपचार

जहाँ किसान को नर्सरी तैयार करनी हो वहाँ पर यह विधि उपयुक्त है। तेजाब से किसान जल सकता है अथवा घाव हो सकते हैं तथा बहुत समय तक तेजाब में बीज रह जाने पर जल भी सकता है। इस विधि से उपचारित बीज करीब 60 प्रतिशत तक अंकुरित हो जाते हैं।

1. इस विधि में पहले पानी को किसी चौड़े बर्तन में उबाल लेना चाहिए। पानी उतना ही लेना चाहिए जिसमें बीज पूर्ण रूप से डूब जाए।

2. उबलते हुए पानी को नीचे उतार कर कुछ समय रखना चाहिए तथा उसमें जो बीज उपचारित करने हो उनको गर्म पानी में डाल देना चाहिए।

3. गर्म पानी में डाले गए बीजों को पानी में ही 24 घंटे तक रखना चाहिए।

इस प्रकार बीज उपचारित हो जाते हैं तथा उन्हें नर्सरी में सीधा बुआई के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

## ख. नर्सरी तकनीक (Nursery Techniques)

### *बीज से पौध तैयार करना*

विलायती बबूल की पौध नर्सरी में बीज द्वारा तैयार करना कठिन कार्य नहीं है परन्तु अच्छी पौध तैयार करने के लिए निम्नलिखित दिशा–निर्देश अपनाना जरूरी है।

### *नर्सरी के स्थान का चयन*

नर्सरी मुख्य रूप से दो तरह की होती है 1–अस्थाई और 2–स्थाई।

अस्थाई नर्सरी हमेशा वृक्षारोपण स्थल के पास होनी चाहिए जिससे पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में नुकसान नहीं हो। इस प्रकार की पौधशालाओं में 10–20 हजार तक पौधे तैयार किए जा सकते हैं जबकि स्थाई पौधशाला हमेशा मुख्य सड़कों के पास होनी चाहिए तथा वहाँ सभी प्रकार की सुविधा जैसे अच्छा पानी, बिजली इत्यादि उपलब्ध होने चाहिए। इस प्रकार की पौधशालाओं में एक लाख से अधिक पौधे तैयार किए जा सकते हैं तथा जहाँ कहीं भी पौधों की जरूरत हो वहाँ पहुँचाया जा सकता है। 50 हजार पौधों के लिए कम से कम 0.4 हैक्टेयर जमीन चाहिए।

**पानी की उपलब्धता**– पौधशाला तैयार करने के लिए पानी की उपलब्धता पूरे वर्ष के लिए अति आवश्यक है। पानी, लवण व क्षारमुक्त होना चाहिए। पानी का पीएच 6.5–7.5 तथा घुलनशील लवण की मात्रा 400 पीपीएम से अधिक नहीं होनी चाहिए।

**मृदा** – दोमट (sandy laom) मृदा होनी चाहिए जो कि क्षार व लवण मुक्त हो तथा पानी मृदा में इकट्ठा नहीं हो। इस प्रकार की मृदा का चयन करना चाहिए।

**स्थान** – पौधशाला में पौध तैयार करने के पहिले पौधशाला के चारों तरफ पेड़ पौधों की बाढ़ (hedge) लगानी चाहिए जिससे नई पौध को गर्म हवा तथा गर्मी से बचाया जा सके। पौधशाला के बीच–बीच में छायादार वृक्ष लगाने चाहिए ताकि उनके नीचे क्यारियाँ बनाने से बहुत अधिक धूप से अंकुरित बीज व नई पौध (seedlings) को बचाया जा सके।

## पौधशालाओं में क्यारियाँ बनाना एवं सिंचाई का प्रबन्ध

सर्वप्रथम नर्सरी स्थल को समतल कर लेना चाहिए। उपलब्ध भूमि में पौध तैयारी के लक्ष्य के अनुसार 10X1 मीटर की क्यारियाँ बनाई जावें। इन क्यारियों की गहराई 20 सेमी से अधिक नहीं रखी जाए (चित्र 17)। क्यारियों के बीच में 1-1.5 मीटर की जगह छोड़ी जावे ताकि निड़ाई–गुड़ाई, पानी पिलाई एवं बदलाई कार्य आसानी से हो सके। एक क्यारी में 2000 से 2200 मिट्टी से भरी हुई पोलीथीन की थैलियां रखी जा सकती हैं।

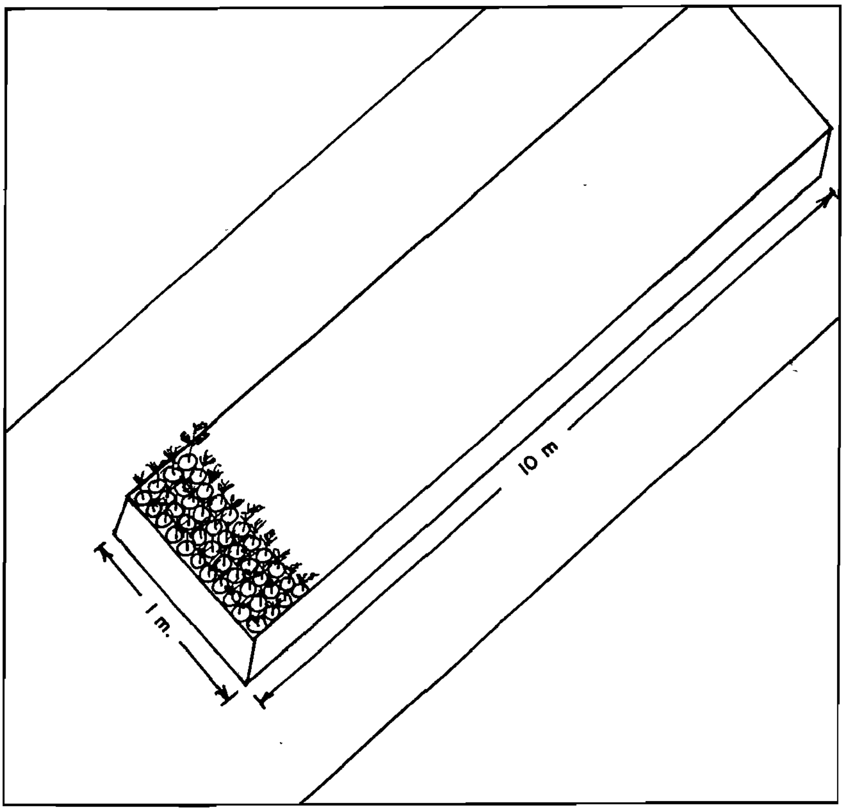


**चित्र 17. पोलीथीन थैलियाँ रखने योग्य एक साधारण नर्सरी क्यारी (housing bed)**

पौध तैयारी हेतु लक्ष्य के अनुसार 10 क्यारियों का एक ब्लॉक बनाया जाए। दो ब्लॉकों के बीच में 5 मीटर का मार्ग छोड़ा जाए, जिससे खाद, मिट्टी ले जाने एवं पौध उठाने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हो। सिंचाई की व्यवस्था हेतु ऊँचे स्थान पर एक टैंक बनाया जाये या प्लास्टिक का बड़ा टैंक बाजार से भी लाया जा सकता है।

## प्लास्टिक की थैलियाँ (Containers for Nursery)

नर्सरी में आजकल पौलीथीन की थैलियों का ही उपयोग होता है क्योंकि ये आसानी से उपलब्ध हैं और सस्ती भी हैं। परन्तु विकासशील देशों में अग्रणी नर्सरी में रूट–ट्रेनर काम में लिए जाते हैं जो कि बार–बार काम में लिए जा सकते हैं तथा इन रूट–ट्रेनरों में पौधों की निचली जड़े अपने–आप ही हवा में आने से सूख जाती हैं जिससे उन पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलने की जरूरत नहीं होती है।

पोलीथीन की थैलियां अलग–अलग आकार की उपलब्ध है। परन्तु 12.5 X 20 सेमी आकार की थैली सबसे अधिक उपयुक्त है। थैलियों में मिट्टी भरने के पूर्व उनमें नीचे की तरफ 5–8 छोटे–छोटे छिद्र कर देने चाहिए जिससे अधिक पानी बहकर बाहर जा सके और जड़ों का श्वसन कार्य भी भली प्रकार हो सके।

## मिट्टी का मिश्रण

प्लास्टिक की थैलियों को भरने तथा क्यारियों में बीज बोने के लिए जो मिट्टी तैयार की जाती है। उनमें दो हिस्सा रेत, एक हिस्सा चिकनी मिट्टी तथा एक हिस्सा सड़े हुए गोबर या कुटी हुई मींगड़ी की खाद का होना आवश्यक है। मिट्टी में रेत व चिकनी मिट्टी का अनुपात इस प्रकार होना चाहिए कि वह दुमट मिट्टी तैयार हो जाए। इस पौध मिश्रण को दीमक से बचाने के लिए एन्डो सल्फान अथवा 5 प्रतिशत नीम की खली अथवा नीम की पत्तियां मिलानी चाहिए।

एक 12.5 X 20 सेमी वाली थैली में करीब–करीब 750 ग्राम मिट्टी आती है तथा जितनी थैलियां भरनी हो उतना मिश्रण तैयार कर लेना चाहिए।

## नर्सरी मिश्रण

नर्सरी मिश्रण पौध को पोषक तत्व, नमी व पकड़ प्रदान करता है। एक अच्छे नर्सरी मिश्रण में निम्न गुण होने चाहिए :–

- हल्का अम्लीय
- उच्च ऋणायन विनिमय क्षमता
- पर्याप्त रंध्रता
- कीट–व्याधि से मुक्त
- पत्थर या बड़े कचरे से मुक्त

## नर्सरी मिश्रण तैयार करने की विधि

नर्सरी मिश्रण को निम्न चरणों में तैयार किया जाता है–

1. दो भाग बारीक बालू, एक भाग तालाब की मिट्टी व एक भाग गोबर की खाद लेकर उन्हें अलग–अलग 2–3 मिलीमीटर की छलनी में छानकर अच्छी तरह मिला लें।

2. बीज को दीमक व अन्य कीटों से बचाव के लिए 5 प्रतिशत नीम की खली या कटी हुई नीम की पत्तियाँ नर्सरी मिश्रण में मिला लें।

नर्सरी मिश्रण की मात्रा पौलीथीन की थैलियों की संख्या व आकार पर निर्भर करती है। फिर भी औसत रुप से 12.5 X 20 सेमी की थैली में 750 ग्राम नर्सरी मिश्रण की आवश्यकता होती है।

## थैलियों में मिश्रण भरना

थैलियों को भरने के पहले यह अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि उनमें छिद्र किए गए हैं या नहीं। अगर बिना छिद्र वाली थैली हों तो उसमें छिद्र कर लेने चाहिए। फिर इनमें मिश्रण भरना चाहिए। थैली भरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि थैली कम से कम 2 सेमी ऊपर से खाली रहनी चाहिए जिससे सिंचाई करते समय उसमें कुछ देर पानी रहे।

## बीज की बुवाई

विलायती बबूल के बीजों में उनके आकार तथा वजन में बहुत भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए 100 बीजों का वजन 1.2 से 4 ग्राम तक होता है। इसलिए यह जरूरी है कि अच्छा बीज ही बुवाई के लिए काम में लेना चाहिए जिससे स्वस्थ पौधे तैयार हो सकें।

बीज को अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए अन्यथा उसका अंकुरण नहीं होगा। प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया है कि 1 सेमी गहराई तक बीज बोने से 70–80 प्रतिशत तक अंकुरण हो जाता है।

**बीज बुवाई का समय :** शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में नर्सरी में बीज बोने का समय फरवरी के तीसरे सप्ताह से मार्च प्रथम सप्ताह तक अच्छा पाया गया है। इस समय बसंत ऋतु होने से तापमान न तो बहुत कम होता है तथा न ही बहुत अधिक। 22–32 डिग्री सेंटिग्रेड तापमान अंकुरण के लिए अच्छा होता है।

## इकट्ठे किए गए बीजों में अंकुरण क्षमता

इकट्ठे किए हुए बीजों की अंकुरण क्षमता पर प्रयोग कर यह देखा गया है कि 2-3 वर्ष पुराने बीज में 85-90 प्रतिशत तक अंकुरण क्षमता होती है। इससे पुराने बीजों में यह क्षमता कम हो जाती है।

## बीजों की बुवाई

भरी हुई थैलियों को 10 X 1 मीटर की क्यारियों में जमा देना चाहिए। इसके पश्चात् 20–22 लीटर पानी 100 थैलियों में सिंचाई के लिए उपयुक्त है। जिससे थैलियों में भरी मिट्टी पूरी तरह संतृप्त हो सके।

अब इन थैलियों में दो–दो पूर्वोपचारित बीजों की प्रत्येक थैली में बुवाई कर देनी चाहिए। इससे यह पक्का हो जाए कि 100 प्रतिशत थैलियों में बीजों का अंकुरण हो।

बीज को अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए। आधा से एक सेमी गहराई उपयुक्त होती है। बीज बुवाई के पश्चात् हल्का सा पानी झारे से दे देना चाहिए तथा हमेशा दिन के समय पानी देते रहना चाहिए जिससे ऊपरी सतह सूखे नहीं।

## ग. अंकुरण, पौध की बढ़वार तथा रखरखाव

### *अंकुरण*

बीजों का अंकुरण बुवाई के 4–5 दिन बाद शुरू हो जाता है जो कि 10–15 दिन तक चलता रहता है। इस दौरान करीब–करीब 80 प्रतिशत तक बीज अंकुरित हो जाता है।

### *छँटाई*

जब पौध 10–12 दिन की हो जाती है तब जिन थैलियों में एक से अधिक पौधें हों उनमें से एक पौधा बाहर निकाल देना चाहिए तथा जिन थैलियों में पौध नहीं हो, उनमें इन पौधों को प्रतिस्थापित कर देना चाहिए जिससे सभी थैलियों में पौध हो सके।

### *सिंचाई*

शुरू के दिनों में एक समय पानी देना जरूरी है। जब पौधा 60–70 दिन का हो जाता है तब एक दिन छोड़कर पानी देना चाहिए जिससे पौधा विपरीत परिस्थितियों के अनुकूल हो जाता है। सिंचाई हमेशा झारों से अथवा फव्वारों से करनी चाहिए। बहुत अधिक पानी देने से पौधों में जड़ या तना को गलन रोग हो जाता है तथा पौधे लंबाई में अधिक बढ़ते है। ऐसे पौधों को जब बाहर खेतों में लगाया जाता है तब उनमें मृत्यु दर अधिक हो जाती है।

मई–जून महीने में अगर बहुत ज्यादा गर्मी हो तब हल्की छाया करने से पौधे स्वस्थ रहते हैं।

**टिप्पणी** : पौधे को कभी भी अधिक मात्रा में पानी नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे जड़ एवं तने में बीमारी लग सकती है और पोषक तत्व पानी के साथ विलेय होकर जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाते है जिससे पौधे को पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिल पाते हैं।

## *पौध की बढ़वार*

अंकुरित होने के 4–5 दिन पश्चात् पौध में 2–2 पत्ती आ जाती है तथा 4–5 सप्ताह में पौधा 9–10 सेमी ऊँचाई का हो जाता है और इस समय तक पौधे में 7–11 तक पत्तियाँ आ जाती है।

किंतु पौधे का तना धीरे–धीरे बढ़ता है। जब पौधा 12–13 सप्ताह पुराना हो जाता है तब वह 25–30 सेमी लंबाई में बढ़ जाता है तथा तने की मोटाई 2–5 मिमी तक हो जाती है। नई पौध में जड़ की वृद्धि अधिक तेजी से होती है जब पौधा 9–10 सेमी का होता है तब उसकी जड़ 25–30 सेमी तक बढ़ जाती है और जड़ें थैलियों से बाहर निकलने लग जाती है या थैलियों में ही घुमाव करना शुरू कर देती है। इसलिए थैलियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करना बहुत जरूरी होता है। पौधा जब 40–50 सेमी ऊँचाई में तथा तना 4–6 मिमी मोटा हो जाता है तब वह रोपण के लायक हो जाता है। फरवरी–मार्च का पौधा जब वृक्षारोपण लायक होता है उस समय वर्षा ऋतु होती है और पौध आराम से लगाई जा सकती है तथा उसे सिंचाई की ज्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती है।

**थैलियों को बदलना :** जैसा की ऊपर बताया गया है कि नवजात पौधे में जड़ ऊपरी हिस्से की तुलना में तीन गुणा अधिक बढ़ जाती है और वह पौलीथीन की थैली में किए गए छिद्र में से बाहर आकर क्यारियों की मिट्टी में चली जाती है जिससे जब पौधे को रोपण के लिए हटाया जाता है तब उसकी जड़ें हिल जाती हैं तथा पौध में मृत्यु दर अधिक होती है। इसलिए यह जरूरी है कि हर 4–6 सप्ताह में पौध को एक क्यारी से दूसरी क्यारी में स्थानान्तरित कर देना चाहिए ताकि पौधे की जड़ों को क्यारी की मिट्टी में जाने से रोका जा सके तथा जो रोपण के समय मृत्यु होती है, उसको कम किया जा सके।

**पौध में सिंचाई :** जैसे बताया गया है कि पौधशाला में शुरू में हमेशा पानी देना चाहिए तथा जब पौध 4–5 सप्ताह की हो जाय तब एक दिन छोड़कर पानी देना चाहिए। परन्तु सिंचाई करते वक्त यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी लगातार पौध की जड़ तक पहुंचता है या नहीं क्योंकि थैलियों में ऊपरी सतह पर पपड़ी जम जाती है जो कि पानी को नीचे जड़ तक नहीं पहुंचने देती है। इसलिए यह अति आवश्यक होता है कि थैलियों में निड़ाई–गुड़ाई समय–समय पर करनी चाहिए। इस निड़ाई–गुड़ाई से सिर्फ पानी ही नहीं अपितु, वायु भी जड़ों को श्वसन के लिए उपयुक्त होती है।

**खाद** : इस पौधे को किसी प्रकार की रसायनिक खाद की जरूरत नहीं होती है। क्योंकि दलहन कुल का पौधा होने के कारण इसके जड़ों में नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणु पाये जाते हैं जो कि वायु से नत्रजन स्थापित कर पौधे को उपलब्ध करवाते है।

**छाया** : विलायती बबूल के लिए पौधशाला में छाया की जरूरत नहीं होती है क्योंकि यह बहुत अधिक गर्मी भी सहन कर सकता है।

**निदान** : पौधशाला में थैलियों की मिट्टी में कभी–कभी दूसरे घाँस–फूँस के बीज अंकुरित हो जाते हैं इसलिए यह ज़रूरी है कि समय–समय पर निराई की जानी चाहिए।

**निड़ाई–गुड़ाई** : पौलीथीन की थैलियों में अधिकतर मिट्टी के ऊपरी सतह पर कठोर तह जम जाती है जो कि पानी को पौधे की जड़ तक नहीं जाने देती तथा न ही हवा का आदान–प्रदान होता है। इसलिए थैलियों में समय–समय पर निड़ाई–गुड़ाई करते रहना चाहिए जिससे पानी व हवा जड़ों को उपलब्ध हो सके।

## पौधरोपण में देरी

कभी–कभी ऐसा होता है कि बरसात जुलाई में समय पर न हो कर देरी से आती है या कई बार पौध की आवश्यकता नहीं होती है और पौध को पौधशाला में ही पूरे वर्ष रखना पड़ सकता है। इस अवस्था में जड़ व तने की कटाई–छंटाई कर देनी चाहिए तथा पौध की एक क्यारी से दूसरी क्यारी में बदल देना चाहिए। कभी–कभी पौध की छोटी थैली से बड़ी थैली में भी बदली की जाती है। इस प्रकार बची हुई पौध को पौधशाला में एक वर्ष से अधिक रख सकते हैं।

## *पौध का रखरखाव*

नर्सरी में कीट–व्याधि का कभी–कभी प्रकोप देखने को मिलता है। विलायती बबूल में जड़ गलन व तना सड़न रोग नहीं होते हैं और न ही इनमें कीट–व्याधि का प्रकोप देखा गया। दीमक जरूर इनको नुकसान पहुंचाती है इसलिए दीमकनाशक दवाई का उपयोग करना चाहिए। नर्सरी प्रबंधक ,अथवा प्रभारी को फिर भी समय–समय पर कीट–व्याधि विशेषज्ञ से परामर्श करते रहना चाहिए।

### *मिट्टी मिश्रण का सूर्य के प्रकाश से उपचार*

मिट्टी के मिश्रण तैयार करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि मिट्टी में अक्सर फफूंद के बीजाणु होते हैं जो कि अनुकूल वातावरण में अंकुरित होकर पौध में जड़ गलन इत्यादि रोग पैदा कर सकते हैं इसलिए यह जरूरी है कि मिश्रण को थैलियों में भरने से पहले उसका उपचार कर लिया जाए। इसके लिए जो मिट्टी भरनी हो उसको हल्का सा पानी से सिंचाई कर प्लास्टिक से अच्छी तरह 5–6 दिन के लिए ढक लेना चाहिए। यह कार्य उस समय करना चाहिए जब हवा का तापमान 45 डिग्री से अधिक हो और खूब तेज धूप हो। इस प्रकार से उपचारित मिट्टी से फफूंद रोग के बीजाणु नष्ट हो जाते है।

**टिप्पणी :** समय पर विशेषज्ञ से सलाह एवं परामर्श पौध को मृत्यु से बचाता है।

## *पौध की गुणवत्ता*

पौधशाला में पौध की गुणवत्ता पर ध्यान रखना जरूरी है। खराब पौध का रोपण करने से पौधा बड़ा होने पर कमजोर रहता है तथा जैवभार (Biomass) भी बहुत कम होता है। इसलिए पौधशालाओं में पौध की गुणवत्ता रखना जरूरी है। वैसे गुणवत्ता नापने के लिए बहुत सी विधियाँ हैं परन्तु सबसे सरल विधि पौध के तने की मोटाई के ऊपर निर्भर होती है। तने की मोटाई गेज द्वारा नापी जा सकती है (चित्र 18)। जब विलायती बबूल की पौध 18–20 सप्ताह पुरानी एवं तना 5 मिमी या अधिक हो तो पौधा वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त होता है।

## घ. काईक प्रवर्धन

विलायती बबूल को काईक प्रवर्धन विधि द्वारा भी तैयार किया जा सकता है। तीन प्रकार की काईक प्रवर्धन विधियाँ मुख्य रूप से प्रयोग में लाई जाती है –

- मूल कलम
- कलम रोपण
- प्ररोह कलम

विलायती बबूल में बीज द्वारा पौधा तैयार करना सबसे सरल विधि है। वनस्पतिक प्रवर्धन से पौधा तैयार करने में दक्षता की जरूरत होती है तथा यह महंगी भी होती है। इस विधि के लिए नियंत्रित वातावरण की जरूरत होती है जिससे पौध को नमी व तापमान बराबर मिलता रहे। केन्द्रीय रूक्ष अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, भारतीय लवण अनुसंधान संस्थान, करनाल, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ इत्यादि संस्थानों ने वानस्पतिक प्रवर्धन द्वारा पौध तैयार करने की विधि विकसित की है।

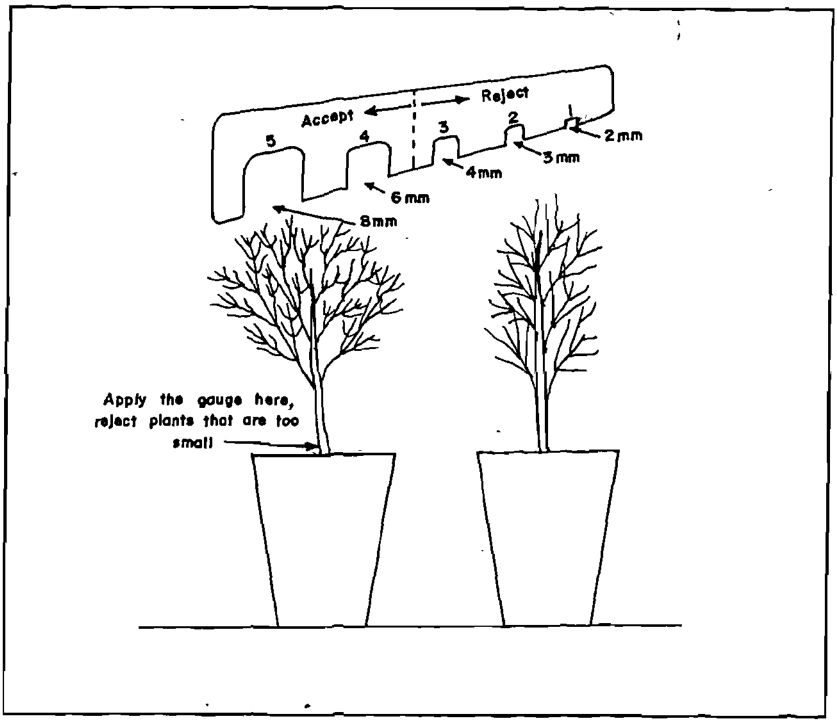


चित्र 18. पौधे की गुणवत्ता मापने का साधारण गेज।

## *शाखा काटकर पौध तैयार करना*

इस विधि में पौधे, शाखा को काटकर तैयार किए जाते हैं इसके लिए फरवरी माह सबसे उपयुक्त रहता है। कटिंग एक वर्ष पुरानी शाखा से ली जानी चाहिए। इसकी गोलाई कम से कम 3 सेमी और लम्बाई 20 सेमी होनी चाहिए।

कटिंग काटकर उसको सेराडेक्स या रूटॉन पाउडर में डुबाना चाहिए अथवा इन्डोल ब्यूटिरिक एसिड के 2000–4000 पीपीएम सांध्रता वाले घोल में 2 मिनट डुबाना चाहिए जिससे फुटाव ठीक होती है। सेराडेक्स लगी हुई कटिंग को सीधे ही थैलियों में लगाना चाहिए। थैलियों में पहले पानी दे देना चाहिए।

इसके बाद डण्डे से कटिंग के आकार का गड्डा बनाकर कटिंग को अंदर डालना चाहिए। चारों ओर के खाली स्थान को मृदा के मिश्रण से भरकर पानी देना चाहिए। कटिंग का ऊपरी सिरा 2 सेमी बाहर रखना चाहिए जिससे 1–2 आंख बाहर रहे। कटिंग लगाते समय कोई शाखा अथवा पत्ता हो तो उसे हटा दिया जाना चाहिए। कटिंग के ऊपरी भाग पर गोबर या काली मिट्टी का आवरण लगा देना चाहिए जिससे ऊपरी कटे हुए भाग से पानी का उड़ना रोका जा सके व कटिंग सूखे नहीं।

इन कटिंगों में 20–25 दिन बाद जड़ों का निकलना प्रारंभ हो जाता है तथा कटिंग जुलाई माह में बाहर लगाने लायक हो जाती है। इस विधि में 20–25 प्रतिशत सफलता मिलती है।

चित्र **19.** नर्सरी में कटिंग की फव्वारा सिंचाई होते हुए।

### फव्वारा कक्ष

वनस्पतिक प्रवर्धन से नर्सरी में पौध तैयार की जा सकती है। परन्तु सफलता सिर्फ 20–25 प्रतिशत ही होती है किंतु यदि शाखा/तना कटिंग को फव्वारा कक्ष में लगाया जाय। यहां पर समय–समय पर फव्वारा स्वतः ही चालू व बंद हो जाता है (चित्र 19)। वहां पर इनकी सफलता 50–60 प्रतिशत हो जाती है। फव्वार कक्ष में मिट्टी का मिश्रण ऐसा होना चाहिए जिससे पानी इकट्ठा न हो। इसलिए मिश्रण में दो भाग बालू मिट्टी एवं एक भाग छोटे–छोटे पत्थर तथा एक भाग पीट मॉस (वृक्षों के तने में उगने वाला ब्रायोफाइट पौधा) का होना चाहिए।

## कलम प्रवर्धन (*Grafting*)

विलायती बबूल अधिकतर झाड़ीनुमा तथा कांटों वाला होता है परन्तु इनमें कुछ ऐसे भी पेड़ होते हैं जो कि बिना काँटे के तथा सीधे तने वाले होते हैं। अगर इस प्रकार के पौधों को इनके बीज से तैयार किया जाता है तो पौध इनके समरूप नहीं होते है। इसका मुख्य कारण इनके गुणों का पृथक्करण हो जाता है। इसलिए अगर प्ररोह कलम विधि काम में ली जाती है तो पौधे में पैतृक गुण ही रहते है।

इस विधि में विलायती बबूल को पहले नर्सरी में बीजों द्वारा तैयार किया जाता है। जब पौध 4–5 महीने की हो जाती है तब उसको 4–5 सेमी की ऊँचाई से काट दिया जाता है। इस कटे हुए पौधे को लम्बवत भाग में 2–2.5 सेमी तेज धार वाले चाकू से काटना चाहिए। इसके पश्चात् जिस पौधे की कलम इस पर हो उसके निचले हिस्से को चाकू से पतला कर देना चाहिए तथा लम्बवत सिरे वाले भाग से अच्छी तरह जोड़ देना चाहिए। तथा फिर इस भाग को पौलीथीन के रिबन से अच्छी तरह बाँध देना चाहिएं इस विधि को क्लिफ्ट ग्राफ्टिंग कहते हैं (चित्र 20–23)।

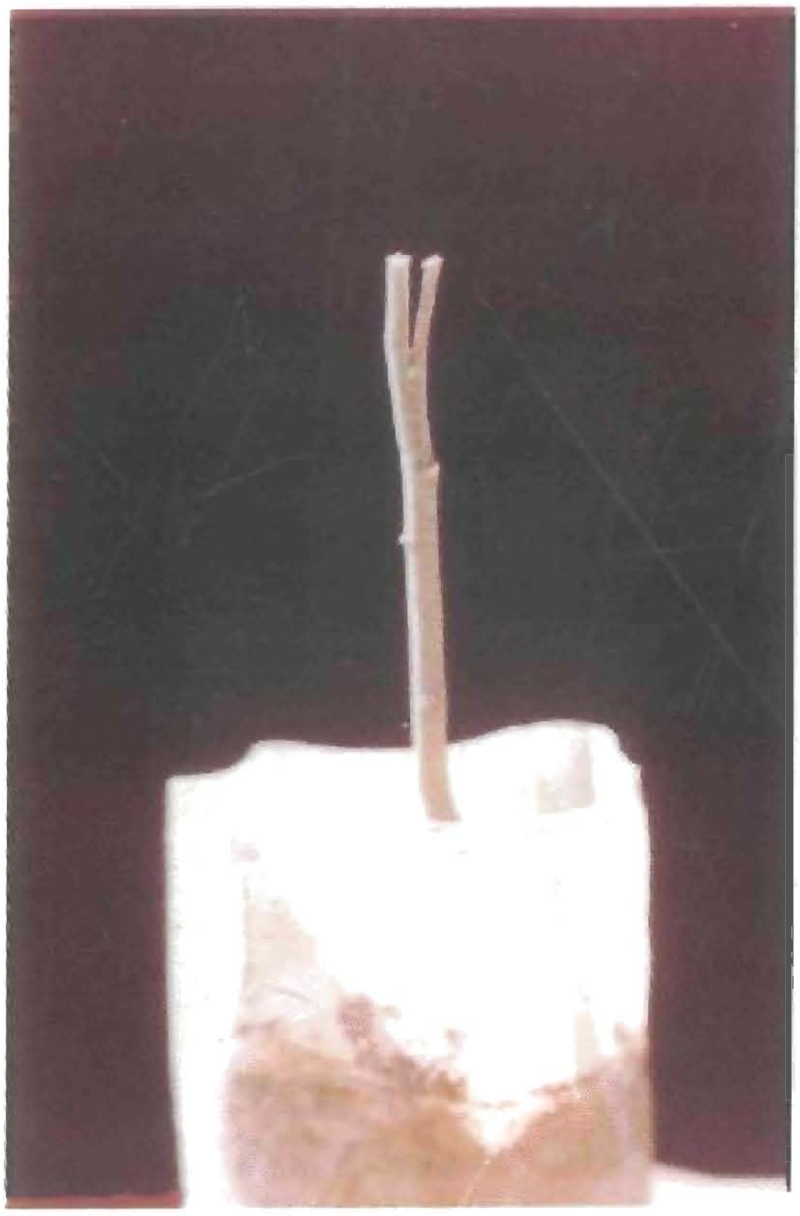

चित्र **20.** दो भागों में काटी हुई आधार कलम

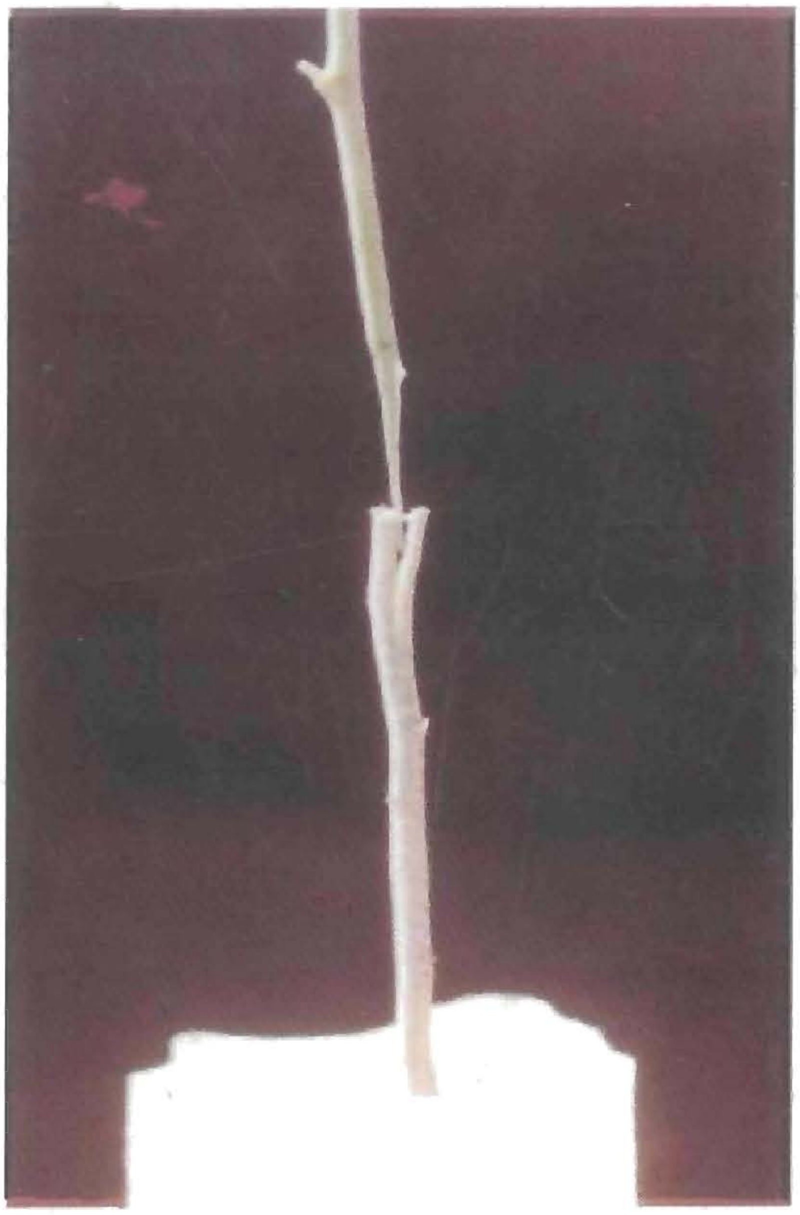

चित्र **21.** काटी गई कलम को आधार कलम पर लगाना।

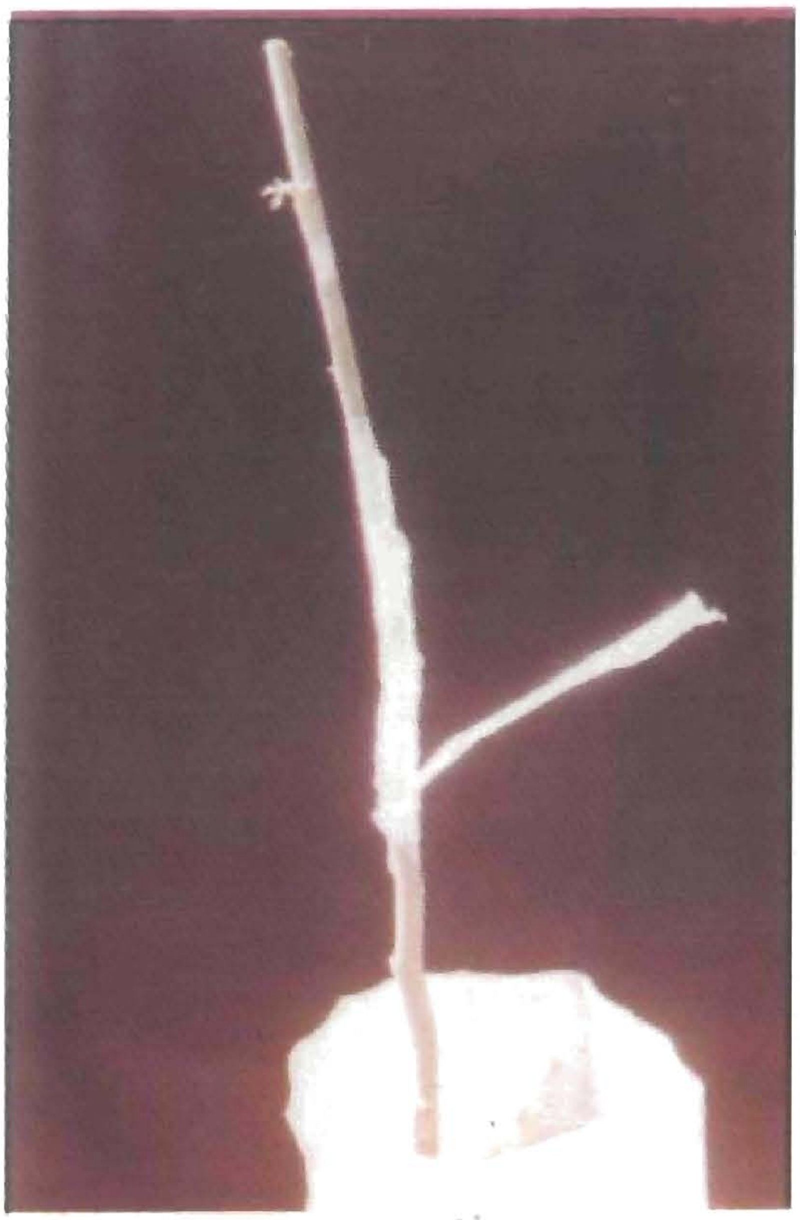

चित्र **22.** काटी हुई कलम को पोलीथीन द्वारा बाँधा हुआ।

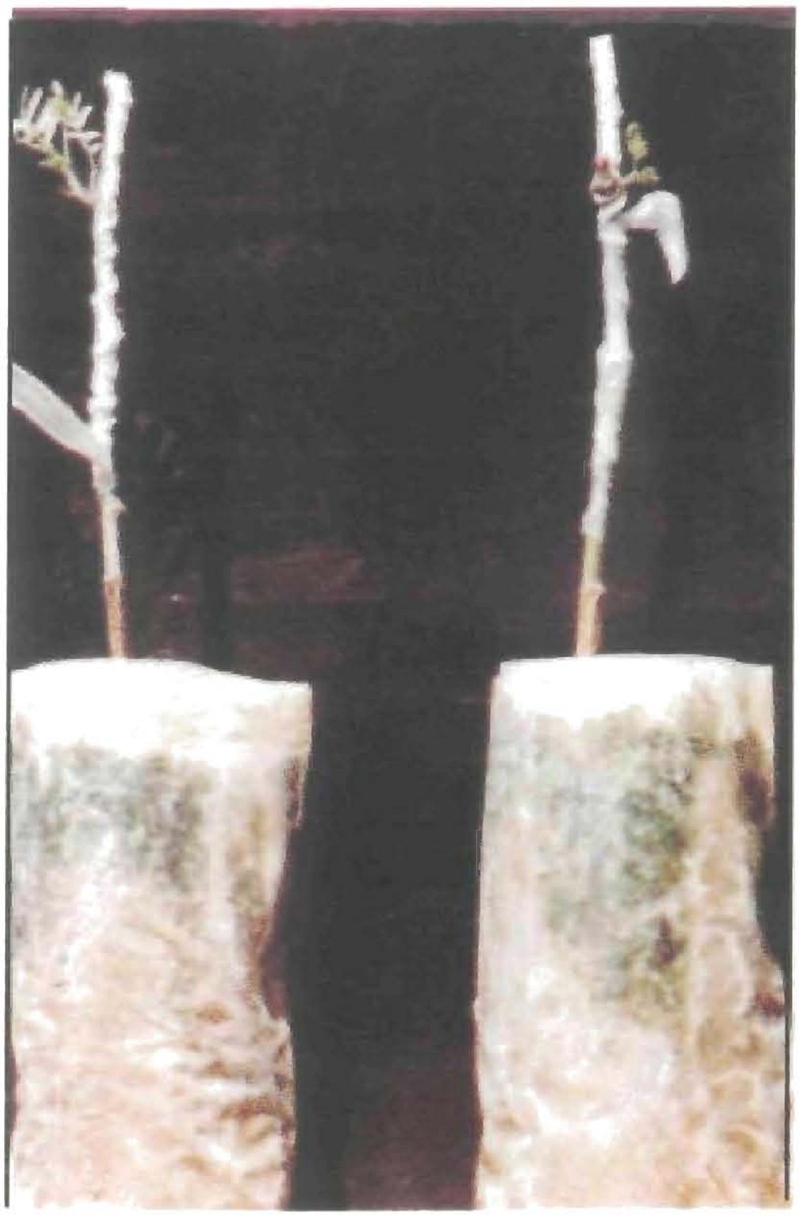

चित्र **23.** सफलतापूर्वक अंकुरित कलम।

इस तरह 10–15 दिन बाद ही कलम की गई शाखा में फुटान शुरू हो जाता है तथा 30 दिन बाद नई शाखा 5–8 सेमी ऊँची हो जाती है। क्लिफ्ट कलम जब 35–40 दिन की हो जाती है तब पौलीथीन का रिबन काट देना चाहिए। करीब 3–4 महीने बाद पौधा रोपण के लायक हो जाता है। इस विधि में 60–65 प्रतिशत सफलता मिल जाती है।

**कलम प्रवर्धन**

विलायती बबूल के ऊपर अन्य प्रोसोपिस प्रजाति को कलम किया जा सकता है। इस विधि से केन्द्रीय रूक्षक्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर ने बिना काँटे तथा अधिक फली वाले पौधे तैयार किए हैं। विलायती बबूल के ऊपर प्रो. एल्बा, प्रो. ग्लेन्डयुलोसा इत्यादि को ग्राफ्ट करके सफलता प्राप्त की है।

## *प्ररोह कलम*

विलायती बबूल को पूर्व अंकुरित प्ररोह कलम द्वारा भी प्रवर्धित किया जा सकता है। प्ररोह कलम तैयार करने के लिए दो वर्ष के रोपित पौधे सर्वोत्तम पाए गए है।

1. कुल्हाड़ी या सिकेटियर से लगभग 1.5 सेमी मोटाई, 2.5 सेमी तने की लंबाई व 15–17 सेमी लम्बी जड़ वाले प्ररोह इकट्ठे कर लेने चाहिए।
2. इन प्ररोहों को बड़े पौलीथीन की थैलियों (18 X 28 सेमी), जिसमें नर्सरी में उपयोग में लिया जाने वाला मृदा मिश्रण भरा हो, उनमें रोपित कर दिया जाता है। यह कार्य फरवरी के दूसरे पखवाड़े में कर लेना चाहिए।
3. अन्य सभी आवश्यकताएं व कार्य, बीज से पौध तैयार किए जाने के समान ही होती है।

जून के अंत तक ये प्ररोह कलम प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाती है। इनकी सफलता का प्रतिशत अक्सर 70 प्रतिशत से ज्यादा रहता है और ये बीज से उगाये पौधों की अपेक्षा तीव्र वृद्धि दर्शाते है।

# V. नये प्लांटेशन (रोपवनों) का सृजन

शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं। इन क्षेत्रों में करोड़ों हैक्टेयर भूमि मृदा–कटाव व भू–क्षरण से प्रभावित है, उक्त वर्णित क्षेत्रों में, विलायती बबूल, सभी जगह उगने व पल्लवित होने की क्षमता रखता है और विशेषतः उन स्थानों पर जहाँ भू–क्षरण हो रहा है, यह प्रजाति वहाँ भी पल्लवित होने की असाधारण क्षमता रखती है। शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में 8 वृहद् भूमि–रचना (land formation) प्रकार पाए जाते हैं। यह वृहद् भूमि–रचना प्रकार निम्न है:

- रेतीले मैदान (sandy plains)
- रेतीले टीबे (sandy dunes)
- छिछली रेतीली मृदाएं (shallow sandy soils)
- पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली भूमि (rocky and semi-rocky terrain)
- भारी चिकनी मृदाएं (heavy clayey soils)
- क्षारीय मृदाएं (alkaline soils)
- लवणीय मृदाएं तथा लवणीय जल वाले क्षेत्र (saline soils and brakish water areas)
- कन्दरा भूमि या बीहड़ (ravines)

## क. सामान्य उद्रोपण विधियाँ

नर्सरी में तैयार पौध (seedlings) को किसी क्षेत्र विशेष में लगाने के लिए कुछ कौशल, अनुभव व अभ्यास की आवश्यकता होती है। उक्त वर्णित वृहद् भूमि रचना प्रकारों में कैसे नर्सरी में तैयार पौध का उद्रोपण (planting out) करें, उसका विस्तृत वर्णन इस अध्याय में किया गया है। उद्रोपण तकनीक से सम्बन्धित कुछ विधियाँ सभी वृहद् भूमि रचना प्रकारों के लिए समान हैं।

- नर्सरी में तैयार पौध का उद्रोपण पूरे भारत वर्ष में प्रथम प्रभावशाली वर्षा के पश्चात यानी जून माह के अंतिम सप्ताह से जुलाई माह के तीसरे या अंतिम सप्ताह के मध्य किया जाता है।
- चार माह की नर्सरी में उगाई गयी पौध (यानी नर्सरी में बीजों की बुआई फरवरी के दूसरे पखवाड़े या मार्च के प्रथम सप्ताह में कर दी जानी चाहिए) उद्रोपण हेतु उक्त वर्णित किसी भी वृहद् भूमि रचना प्रकारों के लिए जून के अंतिम सप्ताह तक (वर्षा ऋतु प्रारंभ होने का समय) पूर्ण रुप से तैयार हो जाती है।
- पोलीथीन की थैलियों को, जिनमें नर्सरी में पौध लगाई गई है, उद्रोपण से पहले किसी तेज धार वाले चाकू से काट लेना चाहिए। फिर पौध को जड़ सहित उसे चारों ओर से घेरी हुई मृदा के साथ सावधानी से थैलियों से बाहर निकालना चाहिए। (चित्र 24)

## ख. रेतीले मैदान

शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्थित रेतीले मैदानों में वर्षा का वार्षिक औसत क्रमशः 200–350 मिलीमीटर व 400–800 मिलीमीटर के बीच है। परन्तु उत्तर प्रदेश के अर्द्ध–शुष्क रेतीले मैदानों पर कहीं–कहीं वर्षा का वार्षिक औसत 800 मिलीमीटर से अधिक है। इन सभी स्थानों में कुल वार्षिक वर्षा का 90 प्रतिशत भाग, मध्य जून से मध्य सितम्बर के बीच प्राप्त होता है। विलायती बबूल को उक्त वर्णित क्षेत्रों में लगाने के लिए कोई विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती।

1. जिस स्थान पर उद्रोपण करना हो, सर्वप्रथम वहाँ उगी हुई झाड़ियों, खरपतवार, बेलें और जमीन पर फैलने वाली लतायें, जैसे तुम्बा इत्यादि को काटकर, स्थान को साफ कर लें।
2. तत्पश्चात् 50x50x50 सेन्टिमीटर आकार के गड्ढे खोद लें।

टिप्पणी : उक्त वर्णित कार्य जून के प्रथम सप्ताह तक (पहली प्रभावशाली वर्षा से पहले) पूर्ण हो जाने चाहिए।

3. शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 350 मिलीमीटर से कम हो, उन स्थानों पर गड्ढों के चारों ओर 1 मीटर व्यास का थाला बना लेना चाहिए, ताकि उद्रोपित पौध को वर्षा का अधिकाधिक जल मिल सके।
4. उद्रोपण मानसून की प्रथम प्रभावशाली वर्षा (एक बार में 20 मिलीमीटर से अधिक) के तुरंत बाद प्रारंभ कर दिया जाना चाहिए।
5. गड्ढों में उद्रोपित पौध लगाने के पश्चात्, गड्ढों को खोदते समय निकली मृदा के पुनः–भरण से पहले उसमें प्रति गड्ढा 4–5 किलो गोबर की खाद व यदि उपलब्ध हो तो 50 ग्राम नीम की खल मिला लेनी चाहिए।
6. थैली से निकालकर पौध (seedlings) की जड़ों को मृदा के साथ सावधानीपूर्वक हाथों से पकड़कर, आधे–भरे गड्ढे (मृदा एवं गोबर की खाद और साथ में यदि संभव हो तो नीम की खल जैसे ऊपर वर्णित हैं, को मिलाकर गड्ढा आधा भरा जाएगा) में रखें।
7. तत्पश्चात् गड्ढे को उक्त वर्णित उपचारित मृदा से पूर्ण रुप से भरकर, चारों ओर से, अच्छी तरह दबाएं ताकि यह पौध इसमें भली–भांति खड़ी हो जाय।

चित्र 25 में क्रमबद्ध रुप से उद्रोपण दर्शाया गया है।

टिप्पणी : यदि उद्रोपण का कार्य वर्षा होते समय या वर्षा के तुरन्त बाद किया जाय तो सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि यह कार्य वर्षा होने के एक या दो दिन बाद किया जाता है। (जैसा कि बहुधा होता है), उस स्थिति में उद्रोपित पौध को तुरंत ही दो लीटर पानी से सींचना चाहिए। यदि वर्षा ऋतु में 10–15 दिन के अंतराल में सामान्य वर्षा होती रही, तो सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है। हाँ, यदि दो प्रभावशाली वर्षा की फुहारों के मध्य 20 दिन से अधिक का अंतर हो जाय, तो जीवन रक्षक सिंचाई की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में 2–3 लीटर पानी प्रति पौध (seedling) डालना चाहिए।

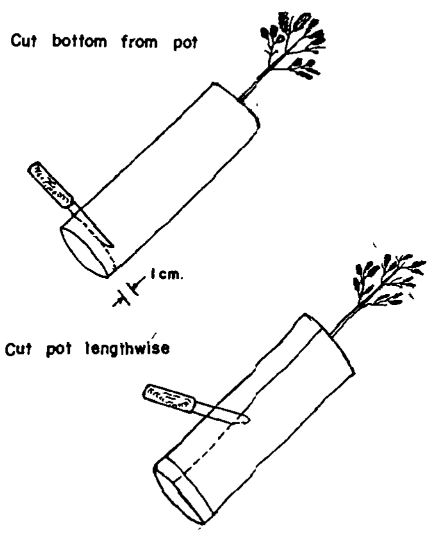


चित्र 24. उद्रोपण हेतु पौधे को तैयार करना। (स्रोत : वेबर और स्टोनी 1986)

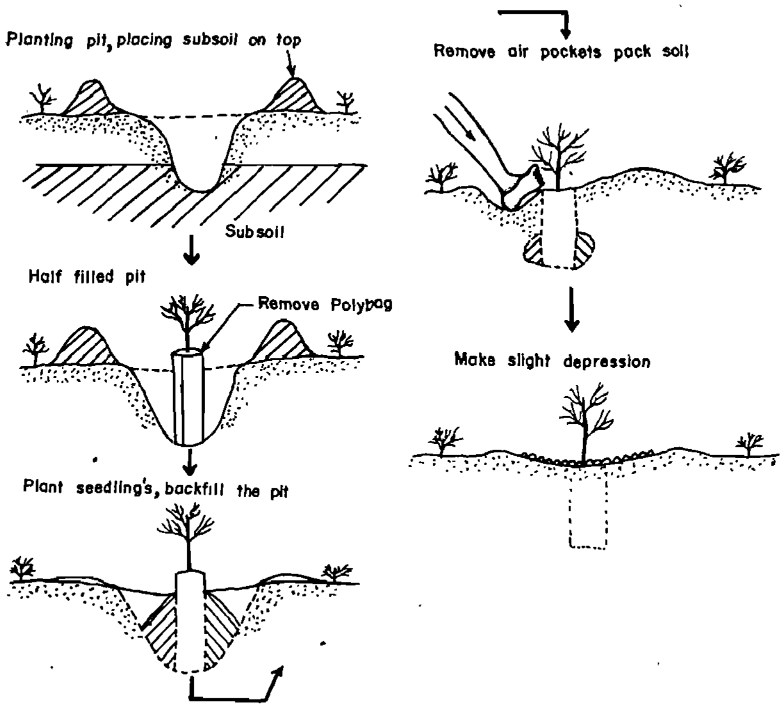


चित्र 25. पौधे के उद्रोपण को दर्शाती क्रमबद्ध अवस्थाएँ।

## ग. रेतीले टीबे

पश्चिम राजस्थान में लगभग 1 लाख 13 हजार वर्ग किमी का क्षेत्र, जो कि थार मरुस्थल के नाम से जाना जाता है, विभिन्न प्रकार के रेतीले टीबों से घिरा है। विभिन्न स्थानों में इन टीबों की तीव्रता (intensity) भी भिन्न–भिन्न प्रकार की है। टीबे रुप की संरचनाएं समुद्र के किनारे, विशेषतः पश्चिमी तट में भी पाई जाती है। ये चलायमान टीबे संचार के साधनों, खेतों एवं ग्रामीणों के निवास स्थानों के लिए गंभीर खतरा बने रहते हैं।

टीबा स्थरीकरण व वनीकरण के लिए विलायती बबूल एक महत्वपूर्ण व अति–प्रभावी प्रजाति है। टीबा वनीकरण के लिए एक विशेष प्रकार की तकनीक काम में ली जाती है। इस तकनीक के तीन प्रमुख चरण (steps) हैं।

1. रेतीले टीबों की जैविक विघ्न **(Biotic Interference)** से रक्षाः टीबे की सीमाओं के चारों ओर से कंटीले तारों को लोहे के छोटे–छोटे खम्बों के बीच लगाकर बाड़ बंदी करना जैविक विघ्न को कम करने अथवा पूर्ण रुप से रोकने का सर्वोत्तम उपाय है। लोहे के खम्बे 1.5 मीटर ऊँचे व दो खम्बों के बीच की दूरी 10 मीटर होनी चाहिए। कंटीले तारों की बाड़ में तीन पंक्तियाँ होनी चाहिए व इनकी ऊँचाई 1.4 मीटर हो। कंटीले तारों की प्रथम पंक्ति जमीन से 35 सेन्टिमीटर ऊँची होनी चाहिए, दूसरी पंक्ति प्रथम पंक्ति से 45 सेन्टिमीटर ऊपर हो एवं तीसरी पंक्ति दूसरी पंक्ति से 60 सेन्टिमीटर ऊपर हो। कंटीले तारों की बाड़–बन्दी एक खर्चीला कार्य है; बाड़ बन्दी का खर्च प्रत्येक चल मीटर (running meter) लगभग 120 रुपए आता है।

### कंटीले तारों की बाड़ का विकल्प

कंटीले तारों की बाड़–बन्दी के विकल्प के रुप में, जिस टीबा भूमि में वनीकरण करना है, उसकी कड़ी निगरानी रखकर मानव व पशुधन के दाब से उसे मुक्त रखना है। टीबों की जैविक विघ्न से रक्षा का कार्य वनीकरण सम्बन्धी कार्यों के प्रारंभ होने से लगभग 5–6 महीने पहले से ही प्रारंभ कर देना चाहिए।

2. **सूक्ष्म–वायुरोधी पट्टियों की स्थापनाः** इन पट्टियों की स्थापना उद्रोपण से पहले नितांत आवश्यक है। इन्हें स्थान की प्रमुख वायु दिशा के विपरीत स्थापित किया जाता है। इनको चैकर–बोर्ड के वर्ग विन्यास के क्रम में, टीबों की चोटियों में 2–2 मीटर के अंतराल में, एवं टीबों की ढलान व तल में 5–5 मीटर की दूरी में स्थापित करना चाहिए।

## वायुरोधी पट्टियों का विकल्प

सूक्ष्म–वायुरोधी पट्टियों को टीबों में स्थापित करने के लिए उसी स्थान में पाई जाने वाली झाडियॉ इत्यादि जैसे बेर की प्रजातियॉ, बुई, खींप, आंकड़ा (आक) और अन्य उपयोग में नहीं आने वाली वस्तुएं जैसे लोहे के पुराने खम्बे, ड्रम इत्यादि; वृक्षों की शाखाएं व पत्तियॉ; फसलों के अवशेष, आदि को उपयोग में लिया जाता है। इस प्रकार की सूक्ष्म वायु रोधी पट्टियॉ टीबों की सतहों से हवा द्वारा होने वाले मृदा के कटाव को कम करने में बहुत सहायक होती हैं।

**3. उद्रोपण (Planting out)** : प्रथम प्रभावशाली वर्षा के उपरान्त, विलायती बबूल की पौध का नर्सरी से उस स्थान को परिवहन करें, जहाँ उनका उद्रोपण करना है। गड्ढों को उद्रोपण करने के दिन तक पूर्ण रुप से तैयार कर लें। रेतीले टीबों में 40 x 40 x 40 सेन्टिमीटर आकार के गड्ढे सर्वथा उपयुक्त होते हैं एवं इनको खोदना भी आसान है। यदि संभव हो तो गड्ढों के पुर्नभरण से पहले मृदा में प्रति गड्ढा 2–3 किलोग्राम गोबर की खाद मिला लें। रेतीले टीबों में गड्ढे उद्रोपण के समय ही बनाने चाहिए अन्यथा तेज हवा के कारण गड्ढे मिट्टी से वापस भर जाते हैं।

## छ. छिछली रेतीली मृदायें

भारत के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के कई भागों में जैसे, राजस्थान में पाली जिला व उसके आसपास के स्थान, गुजरात राज्य में कई स्थान, और महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश के शुष्क क्षेत्रों के कई भागों में छिछली रेतीली मृदाएं पाई जाती हैं। जहाँ इस प्रकार की मृदाएं पाई जाती हैं उन स्थानों पर मृदा की गहराई सामान्यतः 20 से 40 सेन्टिमीटर के बीच होती है। अतः नर्सरी में तैयार पौध के उद्रोपण के लिए 60 x 60 x 60 सेन्टिमीटर के गड्ढे खोदने चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातें:

- यदि उद्रोपण के लिए खोदे गए गड्ढों के नीचे मृदा में चूना युक्त स्तर या मुड (calcareous layer) हो, तो इसे लोहे के सब्बल (crowbar) से तोड़ लेना चाहिए।
- यदि उद्रोपण का स्थान शुष्क क्षेत्रों में हो (350 मिलीमीटर से कम वर्षा का क्षेत्र) तो उद्रोपण हेतु तैयार गड्ढों के चारों ओर एक मीटर व्यास का थाला बनाना चाहिए। इससे उद्रोपित पौध को अधिकाधिक वर्षा का जल उपलब्ध होगा।
- यदि भूमि ढलान वाली है, तो ऐसी भूमि में जल संग्रहण के उपाय करने चाहिए, ताकि भूमि का कटाव व जल का बहना रोका जा सके। परन्तु ऐसी ढलान वाली भूमि में ऐसे सूक्ष्म–स्थानों (micro sites) के चयन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जहाँ गड्ढे खोदे जा सके। ऐसे सुक्ष्म–स्थानों का चयन करें जहाँ मृदा की गहराई अधिकाधिक हो। कई बार चयनित स्थान से गड्ढे को 1–2 मीटर आगे या पीछे/ऊपर या नीचे खोदने पर ऐसे सूक्ष्म स्थान मिल जाते हैं, जहाँ उद्रोपण

हेतु पर्याप्त मृदा विद्यमान होती है। इसलिए भूमि की स्थिति का उद्रोपण की योजना बनाते समय सूक्ष्मता व गंभीरतापूर्वक अवलोकन करना चाहिए। यदि ढलान तीव्र न होकर साधारण हो, तो गड्ढों के चारों ओर अर्द्ध–चन्द्राकार (Half moon shaped) जल–संग्रहण थाला (basin) बनाना चाहिए। यदि उद्रोपण का स्थान तीव्र ढलान वाला है, तो इस स्थिति में चक्रदार (staggered) विन्यास में मेढ़ व नाली (ridge and furrow) पद्धति को अपना कर उद्रोपण करना चाहिए। इस पद्धति में उद्रोपण हमेशा नाली में किया जाता है ताकि बढ़ती पौध को पर्याप्त वर्षा का जल मिल सके।

## ड. पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली भूमि

कई स्थानों पर शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली प्रकार की भूमि पाई जाती हैं। कई भू–भागों में विशेषकर अरावली की पहाड़ियों, जो कि हरियाणा राज्य के दक्षिणी भाग से निकलकर, संपूर्ण राजस्थान को पार करते हुए गुजरात राज्य के उत्तरी भागों तक पहुँचती हैं, विध्यान पर्वत मालाओं (मध्य प्रदेश) एवं सतपुड़ा पर्वत मालाओं (महाराष्ट्र) के क्षेत्रों में जगह–जगह पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली भूमियाँ पाई जाती हैं। इस प्रकार की भूमियाँ आंध्र प्रदेश और कर्नाटका राज्य में छोटे–छोटे क्षेत्रों में इधर–उधर बिखरी हुई भी पाई जाती है। पश्चिम राजस्थान में पथरीली एवं अर्द्ध–पथरीली भूमियाँ तो एक बड़े भू–भाग में पाई जाती हैं।

नर्सरी में तैयार विलायती बबूल की पौध का ऐसी भूमियों में उद्रोपण के लिए कुछ कौशल, अनुभव व अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की भूमियों में प्रथम आवश्यकता होती है कि ऐसे सूक्ष्म–भागों (Micro-sites) का चयन, जहाँ कुछ मृदा एकत्रित हुई हो। तत्पश्चात् ही वनीकरण की योजना का कार्यक्रम बनाया जाता है।

वनीकरण के लिए भूमि में 60 x 60 x 60 सेन्टिमीटर के गड्ढे चयनित सूक्ष्म–भागों में खोदना अति महत्वपूर्ण कार्य है। उद्रोपण की विधि इसके पश्चात्, रेतीले मैदानों में उद्रोपण विधि के समान है, जिस भी तरह की ढलान उद्रोपण वाली भूमि में है, उसके आर–पार 15 सेन्टिमीटर ऊँची मेढ़ बनानी चाहिए, जिससे बढ़ती हुई पौध को वर्षा का जल अधिक मात्रा में व कुछ लम्बे समय तक उपलब्ध हो सके। ऐसी मेढ़ बनाने के लिए उसी स्थान से पत्थर व मृदा एकत्रित की जाती है।

इस प्रकार की भूमि में, गड्ढों के पुनरभरण के लिए अच्छी प्रकार की मृदा की आवश्यकता होती है। (दो भाग रेत व एक भाग काली मृदा)। अतः इस प्रकार की मृदा का प्रबन्ध गड्ढे खोदने से पहले ही कर लेना चाहिए। सामान्यतः इस प्रकार की मृदा का आयात किसी निकट के स्रोत से किया जाता है। गड्ढों के पुनरभरण के लिए आधी मृदा तो वही होनी चाहिए जो गड्ढों को खोदते समय निकली हो व उस मृदा में आधी आयातित अच्छी मृदा मिलानी चाहिए। इसके अलावा पुनरभरण के लिए तैयार मृदा में प्रति गड्ढा 4–5 किलो गोबर की खाद मिश्रित कर देनी चाहिए। सिंचाई व अन्य कार्य उसी प्रकार करने चाहिए जैसे कि रेतीले मैदानों में उद्रोपण के पश्चात किए जाते हैं।

## च. भारी चिकनी मृदायें

उष्णदेशीय अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के कई भागों में विशेषकर आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र राज्य के कुछ भागों में भारी चिकनी मृदायें पाई जाती हैं, जिनमें जल निकासी (drainage) की समस्या है। इस प्रकार की मृदाओं में 1.5 से 2.0 मीटर गहराई में बहुत ही ठोस चूने की पट्टिका पाई जाती है, जिसे सामान्यतः कंकर पान के नाम से जाना जाता है।

विलायती बबूल की पौध का ऐसे स्थानों में उद्रोपण से पहले, चयनित भूमि में पहले एक प्रायोगिक गड्ढा जो कि कम से कम 3 मीटर गहरा हो, कंकर पान के अवलोकन के लिए खोदें यदि कंकर पान 1.5 मीटर की ही गहराई में हो तो ट्रैक्टर द्वारा चलित यांत्रिक बर्मे (auger) से गड्ढे खोदने का कार्य करना चाहिए, ताकि कंकर पान टूट जाए (चित्र 26)। यदि कंकर पान 1.5 मीटर से अधिक गहराई में स्थित हो तो, ट्रैक्टर द्वारा संचालित बर्मे के अधिक उपयोग के फलस्वरुप गड्ढों की दीवारों की मृदा कसकर ठोस हो जायेगी। इस प्रकार के गड्ढों में पौध की जड़ों का उचित प्रकार से वृद्धि नहीं हो पाती। इस स्थिति में ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बर्मे की उपयोगिता नहीं रहती। अतः इस परिस्थिति में गड्ढे खोदने व कंकर पान तोड़ने के कार्य सामान्य विधि से श्रम द्वारा (manual methods) से करना ही उचित है। इस विधि में कंकर पान को लोहे के सब्बल से तोड़ा जाता है।

गड्ढों की लम्बाई व चौड़ाई 60 x 60 सेन्टिमीटर एवं गहराई 90 सेन्टिमीटर हो। यहाँ भी गड्ढों के पुनरभरण के लिए उसी प्रकार की मृदा आयातित करनी होती है जैसी कि भारी चिकनी मृदा वाली भूमि के लिए आवश्यक होती है। उद्रोपण की विधि बिल्कुल रेतीले मैदानों में उद्रोपण के समान है। यहाँ भी गड्ढों में पुनरभरण के लिए उपयोग में ली जाने वाली मृदा में 2–3 किलोग्राम प्रति गड्ढा गोबर की खाद मिलानी अति लाभकारक होती है।

## ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बरमा (Auger)

*एक विशेष प्रकार का ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बरमा विलायती बबूल की पौध लगाने के लिए* गड्ढे बनाने हेतु विकसित किया गया है (चित्र 26)। यह बरमा छिछली रेतीली मृदाओं, भारी चिकनी मृदाओं, क्षारीय भूमि या किसी अन्य प्रकार की भूमि में जहाँ कुछ गहराई में ठोस कंकर पान हो, वहाँ गड्ढे खोदने के लिए बहुत उपयोगी है। इस बरमे का व्यास 15 सेन्टिमीटर है और यह 130 सेन्टिमीटर गहरा गड्ढा बिना किसी कठिनाई के खोदने में सक्षम है। इसके उपयोग से खोदे गए गड्ढों का व्यास लगभग 20 सेन्टिमीटर होता है।

चित्र **26**. विलायती बबूल व अन्य प्रजातियों की पौध को क्षारीय एवं अन्य कंकर *पान वाली भूमियों में लगाने हेतु गड्ढे निर्माण के लिए विकसित ट्रैक्टर संचालित* यांत्रिक बरमा **(auger)** ।

## छ. क्षारीय मृदायें

भारत के अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में, विशेषकर उत्तर–पश्चिमी भाग में कई स्थानों में, और गंगा एवं यमुना नदी के साथ–साथ पश्चिम एवं मध्य उत्तर प्रदेश में क्षारीय मृदा वाली भूमियाँ पाई जाती हैं। विलायती बबूल इन भूमियों में प्राकृतिक रुप से झाड़ी–समूहों (weedy thickets) के रुप में पल्लवित हो रहा है। क्रमवार पद्धति से लगाए गए इस प्रजाति के प्लांटेशन बहुत कम हैं। इस प्रकार की क्षारीय मृदा वाली भूमि में विलायती बबूल को वाणिज्यिक रुप में उगाने की अत्यधिक संभावनाएं हैं।

इस प्रकार की मृदा में भी कंकर पान बहुधा विभिन्न गहराइयों में पाया जाता है। परन्तु ऐसी मृदाएं जो उत्तर प्रदेश में गंगा नदी वाले क्षेत्रों के आस–पास पाई जाती हैं, वहाँ कंकर पान की समस्या बहुत कम है। कंकर पान को तोड़कर उद्रोपण के लिए गड्ढे बनाने हेतु ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बरमा, इस प्रकार की मृदा में भी बहुत उपयोगी है। गड्ढे खोदने के बाद बाहर निकाली मृदा में, प्रति गड्ढा 3 किलोग्राम जिप्सम और 8 किलोग्राम गोबर की खाद मिलानी चाहिए और इसे गड्ढे के पुनरभरण हेतु उपयोग में लाना चाहिए। पौध का उद्रोपण व सिंचाई का कार्य, रेतीले मैदानों में उद्रोपण व सिंचाई की प्रक्रिया के समान है।

**ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बरमे (auger) से बनाए गए गड्ढों में विलायती बबूल की जीवित दर (survival) तथा वृद्धि**

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में एक गहन अध्ययन के बाद यह पाया गया कि विलायती बबूल की पौध जो ट्रैक्टर संचालित यांत्रिक बरमे से गड्ढे बनाकर उद्रोपित की गई और गड्ढे के पुनरभरण में उपयोग में लाई जाने वाली मृदा में जिप्सम तथा गोबर की खाद को मिश्रित कर दिया गया, तो पौध की जीवित दर, वृद्धि व जैविक भार में उल्लेखनीय प्रगति पाई गई।

## ज. लवणीय मृदायें एवं लवणीय जल से प्रभावित क्षेत्र

भारत के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में लवणता की समस्या से प्रभावित भूमि का बहुत बड़ा क्षेत्रफल है। उदाहरणार्थ, संपूर्ण कच्छ का क्षेत्र जो 45652 वर्ग किलोमीटर में फैला है, लवणीय है। इसी प्रकार राजस्थान, विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में हजारों हैक्टेयर का क्षेत्र इस समस्या से ग्रसित है। इसी प्रकार गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश के अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में भी लवणीय मृदाओं की समस्या कई स्थानों में व्याप्त है। फिर भी इन लवणता की समस्या से युक्त भूमियों में विलायती बबूल के झाड़ी समूह पल्लवित होते कहीं भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार के क्षेत्रों में पौध उद्रोपण की तकनीक विशिष्ठ प्रकार की है। यह तकनीक अब तक वर्णित विभिन्न वृहद् भूमि संरचना प्रकारों के लिए उद्रोपण तकनीकों से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ उद्रोपण ऊँचे उठे हुए स्तूपों (मिट्टी को एकत्रित कर ऊँचा ढेर बनाना) में किया जाता है। स्तूपों की चौड़ाई तल में 1 मीटर होनी चाहिए और चोटी पर यह लगभग 75 सेन्टिमीटर हो। यदि उद्रोपण के लिए चयनित भूमि मैदान हो तो सर्वप्रथम भूमि पर ट्रैक्टर द्वारा दो या तीन बार तवी (disc) चला लेनी चाहिए व इसके पश्चात ही स्तूपों का निर्माण करना चाहिए (चित्र 27)। यह सारा कार्य बहुत ही श्रम साध्य है।

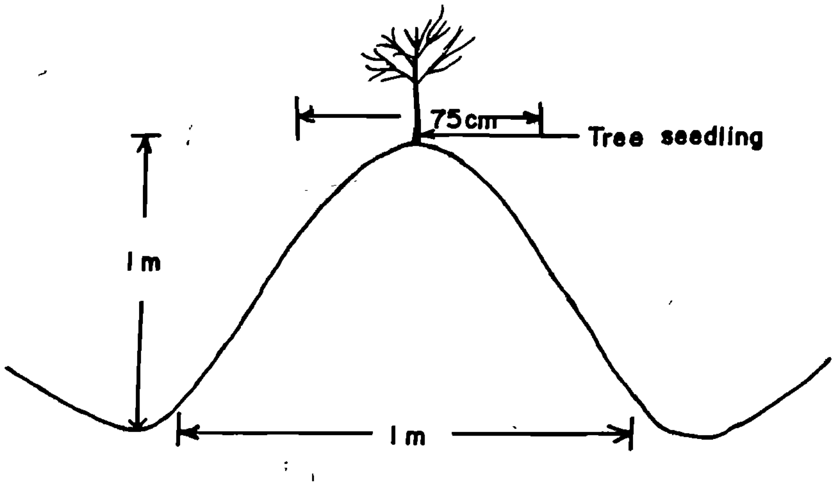


**चित्र 27. लवणीय मृदा एवं लवणीय जल वाले क्षेत्रों में विलायती बबूल के उद्रोपण हेतु आवश्यक स्तूपों का रेखा–चित्र।**

बन्ड निर्माण प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात, इन पर 45 x 45 x 45 सेन्टिमीटर आकार के गड्ढे खोद लेने चाहिए। गड्ढा प्रत्येक बन्ड के लगभग मध्य में होना चाहिए। गड्ढे से निकली मृदा में प्रति गड्ढे 2 किलोग्राम जिप्सम व 4 किलोग्राम गोबर की खाद मिश्रित कर लेनी चाहिए। इस मिश्रण को पौध उद्रोपित करते समय गड्ढों के पुनरभरण में उपयोग में लेना चाहिए। उद्रोपण एवं सिंचाई की प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार की है जैसा कि रेतीले मैदानों के परिप्रेक्ष में पहले वर्णित किया जा चुका है।

टिप्पणी: गोबर की खाद एवं जिप्सम किस मात्रा में मिलाना है, इसका निर्धारण भूमि में कितनी लवणता विद्यमान है, इस पर निर्भर करता है। यदि लवणता अत्यधिक है, तो जिप्सम एवं गोबर की खाद की मात्रा उक्त वर्णित मात्रा से दुगुनी करनी होगी। उन स्थानों पर जहाँ लवणता एवं क्षारीयता अत्यधिक हो, गड्ढे के पुनरभरण के लिए अच्छी मृदा आयातित करनी चाहिए।

*सावधानियाँ*

- पौध की सिंचाई के लिए कभी भी लवणीय जल का उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि पौध को जीवन–रक्षक सिंचाई की आवश्यकता होती है, तो हमेशा अच्छे पानी का ही उपयोग करना चाहिए।
- यदि उद्रोपण के लिए चयनित भूमि पर मृदा अत्यधिक लवणीय एवं क्षारीय हो, तो गड्ढों के पुर्नभरण के लिए, गड्ढे खोदते समय निकली मृदा को कभी उपयोग में न लाएं। ऐसी स्थिति में हमेशा अच्छी मृदा को बाहर से आयातित कर गड्ढों के पुनरभरण हेतु उपयोग में लाना चाहिए।

## झ. कन्दरा या बीहड़ भूमि

कन्दरा भूमि से अभिप्राय है, गहरी व लम्बी–लम्बी खाईयों के समान संरचना वाली भूमि। यह सामान्यतः ऊँची–ऊँची नालियों मार्गों (gullies) के आकार में फैली हुई भू–संरचनाएं हैं। कई नाली मार्ग एक दूसरे के समानान्तर चलते हुए बड़े भू–भाग में विस्तारित होते हुए, अन्त में किसी निकट की नदी जो कि इस प्रकार की भूमि से बहुत नीचे बह रही हो, जा समाते हैं। यह कन्दरा भूमियाँ जल से भू–क्षरण की प्रक्रिया की परिणिति है। इस प्रकार के भू–क्षरण से, अकेले उत्तर प्रदेश में (मुख्य नदियों से लगते हुए कई भागों में) लगभग 12 लाख हैक्टैयर भूमि प्रभावित है। यमुना नदी से लगी कन्दरा भूमियाँ इस प्रभावित भाग के 32 प्रतिशत भाग में है व बेतवा नदी से लगे क्षेत्रों में इस प्रकार की भूमियाँ, कुल प्रभावित क्षेत्र का 19 प्रतिशत है। यमुना व चम्बल नदी की कन्दरा भूमियाँ कई जगह अनवरत 10 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई की पट्टियाँ बनाते हुए, विस्तारित है। जहाँ–जहाँ यह कन्दरा भूमियाँ पाई जाती है, वहाँ की वातावरणीय स्थिति आदर्श रुप में अर्द्ध–शुष्क है व कोई प्रजाति, जिसके इस प्रकार की भूमियों में सफल प्लांटेशन है, तो वह है विलायती बबूल। नदी की गहराई पर ही कन्दरा भूमि की गहराई निर्भर करती है, अतः मुख्य नदी के साथ वाली कन्दरा भूमि, सहायक नदियों के साथ जुड़ी कन्दरा भूमियों से अधिक गहरी होती है। कन्दरा भूमियों का गहराई के अनुसार निम्न प्रकार वर्गीकरण किया गया है:–

- कम गहरी अथवा छिछली – 2 मीटर से कम गहरी।
- मध्यम आकार – 2 से 6 मीटर के बीच में गहराई।
- गहरी – 6 मीटर से अधिक गहराई।

कन्दरा भूमियों में मृदा अधिकांशतः गहरी होती है व भौतिक गुणों में यह दोमट (*loam*) होती है। विलायती बबूल को कन्दरा भूमियों में लगाने के प्रमुख कारण है:–

- मृदा कटाव को रोकना
- कन्दरा भूमियों के और अधिक प्रसार को रोकना
- क्षरित भूमि का सुधार

इस प्रकार की भूमियों में उद्रोपण से पहले सभी नालियों (gullies) के मुहाने तल (bottom) से लेकर सर्वोच्च बिन्दु (Top) तक, उसी स्थान में उगने वाली वनस्पति, विशेषकर काष्ठीय झाड़ियों (brush wood) से अच्छादित कर, बन्द कर देने चाहिए। यह कार्य वर्षा प्रारम्भ होने से पहले (जून के अंतिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह) पूर्ण हो जाना चाहिए। पौध उद्रोपण से पहले करोंदा, झर–बेर व अन्य स्थानीय झाड़ी प्रजातियों के प्रस्फुटित अंशों (sprout) का रोपण नालियों के ढलान व उच्च बिन्दुओं पर करना परम आवश्यक है। इस प्रकार के झाड़ी नुमा पौधे, वर्षा ऋतु में मृदा के कटाव को रोकने में अति सहायक होते है।

## काष्ठीय झाड़ियों के नाली (gully) अवरोध

काष्ठीय झाड़ियों (brush wood) के अवरोध नालियों में जल बहाव की तीव्रता को कम कर देते हैं व जल से मृदा को छानने का कार्य भी करते है। इस प्रकार के नाली अवरोध सर्वोच्च बिन्दु से तलहटी तक ऐसे क्रम में लगाए जाते हैं कि ऊपरी बन्ध का तला निचले बन्ध के सर्वोच्च बिन्दु के समानान्तर स्थित रहे। बन्ध कम से कम 25 सेन्टिमीटर ऊँचा हो, तथा सर्वोच्च बिन्दु में 50 सेन्टिमीटर व तल पर 200 सेन्टिमीटर चौड़ा हो। यह दोनों ओर 180 का ढलान कोण (slope angle) बनाएगा। यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि बंध अधिकाधिक जल बहाव की दिशा के सापेक्ष 90 डिग्री के कोण पर हो। इन बन्धों का उद्देश्य जल एकत्रित करना न होकर, जल बहाव की गति को कम करना है। पहली प्रभावशाली वर्षा के पश्चात कुछ बन्ध टूट जाते हैं व कुछ बन्ध बिलकुल बंद हो जाते हैं। इस प्रकार दो बन्धों के बीच जो मृदा एकत्रित हो जाती है वह पोषक तत्वों से युक्त एवं उपजाऊ होती है।

जैसे ही अगस्त व सितम्बर माह में मानसून कमजोर पड़ता है, विलायती बबूल की नर्सरी में तैयार पौध को उद्रोपण स्थल के समीप स्थानान्तरित कर देना चाहिए। इसके पश्चात दो बन्धों के मध्य एकत्रित उपजाऊ मृदा में 30 x 30 x 30 सेन्टिमीटर के गड्ढे खोद लेने चाहिए। इन गड्ढों में पौध की उद्रोपण विधि ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि रेतीले मैदानों के परिप्रेक्ष में वर्णित की जा चुकी है। यहाँ गोबर की खाद मिश्रित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती व गड्ढों का उसी मृदा से पुनरभरण करना चाहिए, जो गड्ढे खोदते समय बाहर निकाली गई हो। यदि आवश्यक हो तो जीवन रक्षक सिंचाई की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार होनी चाहिए जैसे रेतीले मैदानों के संदर्भ में वर्णित की गई है।

## कायिक प्रवर्धन द्वारा प्राप्त पौध का उद्रोपण

जैसे पहले वर्णित किया जा चुका है कि विलायती बबूल को स्तम्भ कलम (Stem cutting) और मूलमुण्ड रोपण (stump cutting) या दीर्घ उपरोपण (cleft grafting) से भी नर्सरी में तैयार किया जाता है। इस प्रकार तैयार पौध के उद्रोपण की विधियाँ व समय, बीज द्वारा तैयार पौध के उद्रोपण की विधियों व समय के समान ही हैं। परन्तु कायिक प्रवर्धन से तैयार पौध 6 माह से कम उम्र की नहीं होनी चाहिए, आठ या नौ माह उम्र वाली पौध सर्वोत्तम होती है, उद्रोपण पश्चात, कायिक प्रवर्धन से तैयार पौध को उत्तम मृदा एवं नमी अवस्था की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस प्रकार तैयार पौध, बीज द्वारा तैयार पौध से बदलती वातावरणीय परिस्थिति के सापेक्ष कम सहनशील होती है, अतः कायिक प्रवर्द्धन से तैयार पौध को उद्रोपण पश्चात, प्रत्येक दस दिन के अंतराल में शरद ऋतु के अन्त तक (नवम्बर के प्रथम पखवाड़े) 5 से 8 लीटर जल प्रति पौधे के हिसाब से सिंचित करना चाहिए।

# VI. रोपण (Plantation) प्रबन्धन

विलायती बबूल का प्रबन्धन, रोपण के उद्देश्य पर निर्भर करता है। सार्थक रूप में समझने हेतु हम रोपण प्रबन्धन को तीन मुख्य भागों में विभाजित करते हैं।

- उत्पादन व रक्षण के लिए भंडारण
- रखरखाव (बाद का)
- वृद्धि और प्राप्ति

## क. उत्पादन व रक्षण के लिए भण्डारण

साधारणतया विलायती बबूल के वृक्ष घनत्व के लिए हमारे शोधकर्ताओं, विकास कर्मचारियों, वन प्रबन्धकों और अन्य उपयोगकर्ताओं जैसे कृषकों तथा पशुपालकों में कोई एक सर्वमति नहीं है। विलायती बबूल के सम्बन्ध में तालिका–2 में दर्शायी गई सूचना लेखक के लम्बे अनुभवों और विकास कार्यों का विवेचन करती है। इस बात की संपूर्ण भारत में कोई तथ्यात्मक सूचना नहीं है जो फली उत्पादन के लिए सही अंतराल को दर्शाता हो, जो कि प्रजाति की एक महत्वपूर्ण पैदावार है।

**टिप्पणी:** रोपण के विभिन्न उद्देश्यों के लिए अंतराल एक महत्वपूर्ण विचार है, साथ ही सही घनत्व प्राप्त करने के लिए स्थान भी एक आवश्यक शर्त है। उदाहरणार्थ, कम उपजाऊ क्षमता वाली भूमि हेतु सामान्य योजना से हटकर पूर्व में बताये कार्यक्रम को कुछ छोटे स्थान में सीमित रखना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि भण्डारण गति में कुछ बढ़ोतरी या कमी हो, उदाहरण के लिए निम्न घनत्व ह्रासित और सूखे क्षेत्रों में तथा उच्च घनत्व उपजाऊ व सिंचित क्षेत्रों में।

तालिका–2 विलायती बबूल के विभिन्न प्रकार के रोपण हेतु आवश्यक अन्तराल

| रोपण प्रकार | उद्देश्य | | अन्तराल | | घनत्व (व्यष्टि/ हेक्टे॰) |
|---|---|---|---|---|---|
| | मुख्य | गौण | पंक्ति से पंक्ति (मी) | पौध से पौध (मी) | |
| अनुपजाऊ क्षेत्र में वनीकरण (सरकारी पड़ती भूमि, ग्राम सामुदायिक भूमि आदि) | भूमि/मृदा संरक्षण | जलाऊ काष्ठ उत्पादन | 3 | 3 | 1111 |
| रेतीले टीबों का स्थलीकरण | भूमि/मृदा संरक्षण | जलाऊ काष्ठ उत्पादन | 5 | 5 | 400 |
| ऊर्जारोपण | जलाऊ काष्ठ उत्पादन | (अ) कोयला हेतु<br>(ब) फली/बीज उत्पादन | (अ) 3<br>(ब) 2 | (अ) 1<br>(ब) 2 | (अ) 3333<br>(ब) 2500 |
| चारा उत्पादन | फली उत्पादन | (अ) जलाऊ काष्ठ उत्पादन<br>(ब) बीज एकत्रण | (अ) 6<br>(ब) 5 | (अ) 4<br>(ब) 5 | (अ) 416<br>(ब) 400 |
| इमारती लकडी उत्पादन | इमरती लकडी | चारा हेतु फली/बीज | 10 | 5 | 200 |
| बीज उद्यान | गुणवान बीज | फली चारा हेतु | 6 | 6 | 278 |
| बाढ पक्ति | जीवित बाढ़ | – | 0॰3 या 0॰5 | 0॰5 | –(1) |
| कृषि–वन पद्धति | जलाऊ, चारा (फली) | उपयुक्त साहचर्य फसल का उत्पादन | 10 | 10 | 100 |
| वन–चारागाह | जलाऊ चारा (फली) | घासो का उत्पादन/ पशु, पशुओं के लिए छाया | 10 | 5 | 200 |
| मार्गो, नहरों व रेलमार्गो, के किनारे रोपण कृषि भूमि के चारों ओर | सौन्दर्यकरण मृदा संरक्षण, वातरोधों | फली चारा हेतु | एकल पंक्ति (2) | 3–5 | – (1) |
| रक्षापट्टियो (3) | मृदा/नमी संरक्षण, वायु गति कम करना | फली चारा हेतु, पशुओं के लिए छाया | 3 | 3 | – (1) |

1. घनत्व प्रति हैक्टेयर इस बात पर निर्भर करता है कि रक्षा पट्टियो हेतु प्रजाति की कितनी पंक्तियों का समावेश किया गया है और कुल चलायमान दूरी मीटर मे
2. यदि रोपण योजना दो या अधिक पक्तियों के लिए हो, तो पंक्ति से पंक्ति की दूरी 3 मीटर रखी जाए। इस प्रकार रोपण क्रमबद्ध तरीके से होना चाहिए।
3. तीन पंक्ति रक्षापट्टी पौध हेतु विलायती बबूल या तो अन्दर पंक्ति में या बाहरी पंक्ति मे लगाना चाहिए। पॉच पंक्ति रक्षापट्टी पौध हेतु विलायती बबलू या तो अन्दर से द्वितीय और बाहर से द्वितीय पंक्ति में लगाना चाहिए।

(हर्ष 1993, डागर 1998, सिंह 1998, भा. वानिकी अनु. एव शिक्षा परिषद 1993)

## ख. रखरखाव

शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में किसी भी तरह की भूमि में किसी भी तरह का रोपण, या कुछ समय पहले किए गए रोपण हेतु बिजौला के लिए प्रमुख आवश्यकताएं निम्न हैं–

- सिचाई
- रक्षण
- मृतपौध प्रतिस्थापन
- परिपालन

### *सिंचाई*

यदि किसी स्थान पर उचित, अच्छी–वितरित वर्षा है तो उस स्थान पर रोपित बिजौलों को वर्षा ऋतु के अन्त तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती लेकिन शुष्क क्षेत्रों में 5–7 लीटर जल प्रति बिजौला सिंचाई आवश्यक है जबकि तापमान अधिक हो। यदि उपरोक्त व्यवस्थित ढंग से पानी मिलता रहे तो मार्च के दो सप्ताह तक सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

मार्च के दूसरे सप्ताह बाद शुष्क क्षेत्रों में तापमान कभी–कभी यकायक तेजी से बढ़ता है इसलिए मार्च के दूसरे सप्ताह बाद यह आवश्यक हो जाता है कि रोपित बिजौलों की सिंचाई की जाय।

**टिप्पणी** : मार्च के दूसरे सप्ताह के बाद से दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के जून माह में आगमन तक की समयावधि, रोपवनों में बिजौला रोपण हेतु बहुत कठिन समय है। साथ ही रोपवनों में रोपित बिजौलों की सिंचाई करना कठिन कार्य है लेकिन बिजौलों की उत्तरजीविता एवं वृद्धि, इस बात पर निर्भर है कि इस समयावधि के दौरान उन्हें कुछ जल, चाहे वह कम मात्रा में हो, मिले।

विलायती बबूल को 10–12 लीटर पानी प्रति बिजौला, अप्रैल के दूसरे सप्ताह, मध्य मई और जून के द्वितीय सप्ताह के दौरान देना चाहिए।

**टिप्पणी** : यह पानी की आवश्यकता केवल प्रथम वर्ष के लिए है। बिजौला को अपने जीवन अवधि की एक ग्रीष्म काल उत्तरजीवित रहते हुए निकालने के पश्चात् सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

## सिंचाई की तैयारी

प्रथम ग्रीष्म ऋतु हेतु यह सलाह दी जाती है कि कोई कृत्रिम सिंचाई का माध्यम आसपास के जल स्रोतों से व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रायः खुला जल स्रोत रोपवनों के आसपास नहीं होता है अतः 30,000–40,000 लीटर क्षमता के जल टैंक परिवहन के लिए होना चाहिए। औसतन एक टैंकर की परिवहन लागत 100–150 रुपए (2.5 से 3.7 अमरीकी डालर) होती है जबकि इतनी क्षमता के प्रत्येक टैंकर द्वारा 5000–6500 बिजौलों को पानी दिया जा सकता है।

### *बिजौला रक्षण*

विलायती बबूल की पत्तियाँ स्वादरहित होती हैं, और साधारणतया जानवर इसके बिजौलों को नहीं खाते हैं। फिर भी, जब कभी संपूर्ण क्षेत्र में केवल यही एक हरी चीज दिखाई देती है तो, पशु इसके ऊपरी भाग को चर जाते है। इस प्रकार एक बार बिजौले के ऊपरी सिरे को चरने के पश्चात्, पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है तथा इस प्रकार के पौध का प्रबन्ध करना कठिन हो जाता है।

वृक्ष बिजौलों को किसी भी प्रकार की क्षति, बहुत नुकसानदायक है, चाहे यह क्षति कम हो या अधिक तथापि चरने वाले पशुओं से रक्षण आवश्यक है। सामान्यतया रोपवनों के रक्षण हेतु दो प्रमुख बातें निम्न है–

- भौतिक अवरोधक
- सामाजिक बाढ़

### *भौतिक अवरोधक*

यदि संसाधन उपलब्ध हों तो कंटीले तारों की बाड़ तीन पंक्तियों में करनी चाहिए जैसा कि बालुई समतल क्षेत्रों की रोपण विधि में बताया गया है। यह किसी भी प्रकार के भूमि सुधार और मृदा प्रकार के उपयोग में लायी जा सकती है।

यदि **मृदा, मृतिका और साद–मृतिका, बंजरी और पारस्परिक स्थिर** हो, तो नाली कम–स्तूप बाढ़ लगानी चाहिए। रोपित स्थान के चारों ओर एक मी. गहरी नाली खोदनी चाहिए (0.5 मी. चौड़ी तले में और लगभग 1.4 मी. चौड़ी ऊपरी ओर)। खोदी हुई मिट्टी को नाली के अन्दर डालकर कंटीले झाड़ियों के बीज या उपचारित विलायती बबूल के बीजों को छिड़क देना चाहिए।

पथरीले व अर्द्ध–पथरीले स्थानों पर जहाँ खुदाई करना एक कठिन कार्य है। इन स्थानों पर प्रायः पत्थर पर्याप्त मात्रा में होते है। इन्हें एकत्रित कर पत्थर की दीवार बनायी जा सकती है तथा पशुओं को रोका जा सकता है। यहाँ पर यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि दीवार की ऊँचाई लगभग 1.5 मीटर हो।

पूर्णतया रेतीले स्थानों में या तो कंटीले तारों की बाढ़ या जीवित बाढ़ ही रक्षण हेतु लगाई जा सकती है क्योंकि न तो नाली कम स्तूप बाढ़ और न पत्थर की दीवार बनायी जा सकती है।

### जीवित बाड़ (Live Fencing)

यदि रोपण कार्यक्रम अच्छी तरह नियोजित किया गया हो तो केवल जीवित बाढ़ ही प्रभावी होगी। इसलिए जीवित बाढ़ लगाने वाले बीजों को विलायती बबूल बिजौले के रोपण के एक वर्ष पूर्व ही लगा देना चाहिए। इसमें कोई भी कंटीली झाड़ीयुक्त पौध या विलायती बबूल को ही उपयोग में लाया जा सकता है। बीजों की बुवाई प्रथम अच्छी वर्षा के दौरान संपूर्ण रोपित क्षेत्र के चारों ओर कर देनी चाहिए। जिससे अगले वर्ष जब विलायती बबूल को उद्रोपित किया जाय तब तक जीवित बाढ़ पूर्णतया स्थापित हो जाए। जीवित बाढ़ के स्थापन के समय पूर्णतया नियमित रूप से ध्यान देना चाहिए और यदि कहीं कोई रिक्त स्थान दिखे तो वहाँ तुरंत नए बीज या पौधा रोपित करना चाहिए जिससे स्थान भर जाए।

### *सामाजिक बाड़* (Social Fencing)

इस प्रकार की बाड़ ग्राम सामुदायिक भूमि या अन्य प्रकार की सामूहिक भूमि में अच्छी तरह काम में आती है। ग्रामवासियों को भी रोपवनों के स्थापन के प्रारंभिक वर्षो के दौरान रक्षण हेतु जागरूक होना चाहिए। पशुधन मालिकों को किसी भी प्रकार के बंधन से मुक्त रहते हुए इस बात पर सहमत होना चाहिए कि पशुओं को चरने हेतु कई वर्षो तक दूसरी दिशा में भेजे जब तक कि रोपवन पूर्णतया तैयार नहीं हो जाता या वृक्ष एक नियमित ऊँचाई प्राप्त नहीं कर लेता। यदि सम्भव हो तो सभी ग्राम समुदाय के लोग आपस में एक सहमति बनाकर एक देखरेख करने वाला व्यक्ति रोपवन के पास रख दे जो कि हमेशा वहाँ उपस्थित रहकर रोपवन के आसपास आने वाले पशुओं को दूर हाँकता रहे।

## *क्षतिपूर्ति करना* (casulting replacement)

प्रत्येक प्रकार के भूमि सुधार रोपण में 10–15 प्रतिशत बिजौले रोपण के तुरंत बाद मर जाते है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जो कि निम्न हैं–

- परिवहन आघात
- उद्रोपण के सही तरीके के अभाव के कारण
- बिजौला के जड़ के नीचे किसी प्रकार का अवरोध या पत्थर आने के कारण
- दीमक लगने से आघात
- कृतकों (Rodent) के आघात के कारण

इसलिए यह सलाह दी जाती है कि उचित मात्रा में बिजौलों को रोपणी में या रोपवन के पास सुरक्षित रखना चाहिए। सामान्यतया रोपवन के पास पेड़ों की छाया में कुछ अस्थायी क्यारियाँ बनानी चाहिए।

जिस किसी गड्डे में बिजौला मृत हो जाए इन क्यारियों में रखे पौधों से उन्हें बदल दिया जाना चाहिए। जितना जल्दी हो सके क्षतिपूर्ति कर देनी चाहिए। यदि उसी मौसम में बिजौले उपलब्ध न हो तो उन्हें अगले वर्ष के प्रारंभ में बदल देना चाहिए। उसी विधि का अनुसरण करना चाहिए जो रोपणी से बिजौला उद्रोपण में उपयोग में लायी गयी थी।

**टिप्पणी** : यदि रोपित गड्डों के आसपास कोई गड़बड़ी दिखे तो उसमें आवश्यक सुधार किया जाये जैसे कि यदि वहाँ पत्थर दिखे तो गड्डे को गहरा खोदकर वहाँ से पत्थर साफ कर लेना चाहिए।

## *परिपालन (Tending)*

परिपालन वन सस्य के जीवन की, बिजौला से लेकर प्रौढ़ावस्था तक, किसी भी अवस्था में उसके लाभ के लिए किये जाने वाले किसी कार्य को कहते हैं। इसमें स्वयं वन सस्य तथा उससे स्पर्धा करने वाली वनस्पति दोनों पर किए जाने वाले कार्य जैसें निराई, सफाई, विरलन एवं शाखाँ छंटाई सम्मिलित हैं।

## *निराई (Weeding)*

खरपतवार की निराई हो जाने से बिजौलों को आर्द्रता, पोषक तत्वों, प्रकाश और जड़ स्पर्धा से मुक्त होकर वृद्धि के लिए समुचित स्थान प्राप्त हो जाता है। जैसा कि विलायती बबूल एक तीव्र वृद्धि वाली प्रजाति है, इसलिए Spot ring विधि सबसे अच्छी है। पौधों

के चारों ओर फावड़े या कुदाली से गोलाकार में 1 मीटर व्यास तक सफाई करना चाहिए। प्रथम वर्ष के दौरान तीन बार पौधों के चारों ओर निराई की जानी चाहिए।

- वर्षा ऋतु के तुरंत बाद / अक्टूबर मध्य में
- बसंत ऋतु के प्रारंभ में, अंतिम फरवरी या मार्च प्रारंभ में
- अंतिम जून के दौरान, दक्षिणी पश्चिमी मानसून के एक बार बरस जाने के पश्चात्

द्वितीय वर्ष में दो बार निराई की जानी चाहिए

- बसंत ऋतु की शुरूआत में
- वर्षा ऋतु के अंत में

**टिप्पणी :** इसमें केवल एक ही कार्य नहीं किया जाता (पानी को छोड़कर) जिसका अपना बिजौलो की उत्तरजीविता और वृद्धि पर बड़ा प्रभाव है इसको साफ एवं खरपतवार रहित रखकर।

समतल बालुई और अन्य समतल तलरूप क्षेत्रों में यदि पंक्ति और पौध, तथा पंक्ति एवं पंक्ति के बीच में अंतराल 3 मीटर या इससे अधिक हो तो दो बार ट्रैक्टर से जुताई करनी चाहिए, जिसमें द्वितीय जुताई, प्रथम के समकोणीय होनी चाहिए। इस प्रकार की पूर्ण निराई वर्ष में एक बार अधिकाधिक मानसून के प्रारंभिक समय में होनी चाहिए। शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में संपूर्ण निराई आर्द्रता संरक्षण में भी उपयोगी है।

## *सफाई (Cleaning)*

जब रोपण दो वर्ष की आयु ग्रहण कर लेता है, तब सफाई का कार्य शुरु होता है। इसमें एक कुल्हाड़ी के द्वारा अवांछित प्रजाति बालवृक्षों तथा बेलों की कटाई की जानी चाहिए और यदि संभव हो तो अवांछित प्रजाति के नीचे से कुछ मिट्टी खोदकर उसकी जड़ भी निकाल लेनी चाहिए।

कई बार यह देखा जाता है कि विलायती बबूल की कुछ शाखाएं, मुख्य तने के नीचे से भूमि के अंदर से निकलती दिखाई देती है, यह पौधे के झाड़ीनुमा होने का संकेत देता है। सफाई के लिए यह आवश्यक है कि पौधा सीधा, शाखा रहित उदग्र रुप से बढ़े जो कि कम से कम 90 प्रतिशत पौधों में हो।

एक या दो सीधे, श्रेष्ठ उदग्र तने को छोड़कर भू–तल से 1 मीटर तक दिखाई देने वाली सभी शाखाओं को काट देना चाहिए। यदि कई शाखाएं निकल रही हों तो श्रेष्ठ को छोड़कर सभी को साफ कर देना चाहिए और ठूंठों पर से छाल भी उतार देनी चाहिए।

जब रोपण तीन वर्ष की आयु ग्रहण कर ले तो श्रेष्ठ मुख्य तने को भी छोड़कर, द्वितीय तने को काट देना चाहिए। यदि द्वितीय शाखायित तना, मुख्य तने के आधार से जुड़ा हो तो उसे, उस जुड़े स्थान से न काटकर 5–8 सेमी दूर से काटना चाहिए तथा उसकी छाल उतार देनी चाहिए।

यदि अन्य कोई नई शाखा, मुख्य तने के आधार से हो या भूमि तल से निकलती हो तो उसे उसी स्थान से काट देना चाहिए। यदि अन्य कोई अवांछित प्रजाति या बेल दुबारा निकले तो उसे पुनः काट देना चाहिए। इस प्रकार यह सफाई का कार्य रोपण के पाँच वर्ष की आयु तक प्रतिवर्ष करना चाहिए।

## शाखा छँटाई (Pruning)

यदि उद्देश्य शाखाहीन तथा एक शीर्ष वाला वृक्ष बनाने का हो तो वृक्षों की प्रारंभिक अवस्था में उनके तने पर से हरी शाखाओं को मुख्य तने के पास से छँटाई कर देना चाहिए।

छँटाई का कार्य तेज धारदार कुल्हाड़ी या आरी से करना चाहिए तथा मुख्य बढ़ती हुई शाखाओं को छोड़कर, सभी शाखाओं को जितना पास से हो सके, छँटाई करना चाहिए। यह कार्य नियमित समयांतराल पर करते रहना चाहिए जब तक वृक्ष वांछित गांठरहित स्कन्ध ऊँचाई प्राप्त नहीं कर लेता।

वृक्ष की किशोरावस्था में ही पार्श्व शाखाएँ निकलती हैं। एक बार वृक्ष के 8–9 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद शाखाएँ नहीं निकलती हैं।

मृत शाखाओं की छँटाई भी आवश्यक है। इनकी नियमित समयान्तराल पर छँटाई कर देनी चाहिए। यदि वृक्ष एक बार अच्छी ऊँचाई एवं विकसित छत्र उच्च घनत्व वाले रोपवनों में प्राप्त कर लेता है तो इन मृत शाखाओं की प्राकृतिक शाखा छँटाई (Natural Pruning) हो जाती है।

विरलन (Thinning)

विरलन एक ऐसा कार्य है जिसके द्वारा पौधों की वृद्धि एवं आकृति को बढ़ाया जा सकता है। यह पौधों के अन्तराल को बढ़ाता है तथा प्रति इकाई वृक्ष क्षेत्रफल को कम करता है। जैसा कि विलायती बबूल को संपूर्ण भारत में इमारती लकड़ी के लिए रोपण नहीं किया जाता है इसलिए विरलन की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी जब कभी खड़ी फसल को कृषि–चारागाह या कृषि–वानिकी उद्देश्य हेतु उपयोग में लेते हैं तो रोपण क्षेत्र को 10X5 मी या 10X10 मी में विरलन किया जाता है।

वांछित अंतराल प्राप्त करने हेतु, रोपण क्षेत्र की योजना बनाकर विरलन किए जाने वाले वृक्षों का चिन्हांकन करना जरूरी है। वृक्षों को आधार से बड़ी कुल्हाड़ी, हाथ आरी या पावर आरी से काटना चाहिए तथा ठूंठ पर से छाल उतार लेनी चाहिए। विरलन जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी कर लेना चाहिए क्योंकि इस प्रजाति का ठूंठ निकालना बहुत कठिन कार्य है।

विरलन की इसी विधि को किसी भी प्रकार के रोपण प्रबन्धन में उपयोग में लिया जा सकता है।

## ग. वृद्धि और प्राप्ति

विलायती बबूल के लिए प्राप्त वृद्धि और प्राप्ति का आकलन अनुसंधान खण्डों (Research Plots) से प्राप्ति के आधार पर किया गया है। संपूर्ण भारत में इस वृक्ष के वृहत पैमाने पर रोपण का, एक या दो ही अध्ययन प्राप्त है।

जोधपुर, काजरी में विलायती बबूल के एक अच्छी तरह प्रबंध किए रोपण क्षेत्र में औसत ऊँचाई वृद्धि और मूलसन्धि व्यास (Collar diameter) को तालिका–3 में बताया गया है। इस रोपवन में, पंक्ति से पंक्ति अंतराल 4 मीटर तथा पौध से पौध अंतराल 3 मीटर है। इस प्रकार 833 पौध प्रति हैक्टेयर थी।

**तालिका–3 विलायती बबूल का पाँच वर्षो की औसत वृद्धि**
**(घनत्व = 833 वृक्षे / हैक्टेयर)**

| वर्ष | पौध ऊँचाई (मीटर) | मूल सन्धि व्यास (सेमी) |
|---|---|---|
| 1 | 0.4 | 1.5 |
| 2 | 0.7 | 2.5 |
| 3 | 1.9 | 6.0 |
| 4 | 3.0 | 8.5 |
| 5 | 4.6 | 11.5 |

*(स्रोतः काजरी, 1995)*

विलायती बबूल को जलाऊ लकड़ी हेतु अनउपजाऊ भूमि में 1.5X1.5 मीटर अंतराल पर लगाया गया जिसकी औसत ऊँचाई 2.7 मी. और आधार व्यास 3 सेमी. तीन वर्षो बाद थी।

उत्तर प्रदेश में इष्टतम स्थिति में, वृक्ष की औसत वृद्धि दर 2.5–4 सेमी. प्रति वर्ष परिधि में और 30–60 सेमी. ऊँचाई में होती है। इस प्रकार वृक्ष के 20–25 वर्ष पहुँचने तक औसत ऊँचाई 12 मी. तथा औसत परिधि 1.5 मी. हो जाती है।

यह आकलित किया गया है कि शुष्क क्षेत्रों में बालुई–दुमट मृदा में विलायती बबूल के अच्छी तरह प्रबन्ध किए गए रोपवनों से 4.3 टन प्रति हैक्टेयर जलाऊ लकड़ी का उत्पादन तीन वर्षों में होता है जिसका अन्तराल 4X3 मी. हो। साथ ही यह भी प्रकाशित है कि दो वर्ष के उच्च घनत्व वाले रोपवनों में प्रजाति का लवण–क्षार मृदा में सूखी लकड़ी का उत्पादन 6.7 टन/ हैक्टे. और कन्दरा भूमि में इसका उत्पादन 0.6 टन हैक्टेयर होता है।

विलायती बबूल के विभिन्न क्षेत्रों और मृदा प्रकारों के व्यवस्थित रोपण के वृहत अध्ययन के अनुसार प्रजाति की निम्न आयतन सारणी है (तालिका 4)

**तालिका – 4 विलायती बबूल हेतु आयतन सारणी (छाल सहित)**

| *आवाक्ष ऊँचाई वर्ग (सेमी.) | वृक्ष ऊँचाई (मी.) | | | |
|---|---|---|---|---|
| | 6 | 9 | 12 | 15 |
| 5–10 | 0.034 | 0.040 | 0.045 | 0.051 |
| 10–15 | 0.054 | 0.069 | 0.084 | 0.099 |
| 15–20 | 0.083 | 0.113 | 0.143 | 0.172 |
| 20–25 | 0.122 | 0.117 | 0.220 | 0.270 |
| 25–30 | 0.171 | 0.244 | 0.318 | 0.392 |
| 30–35 | 0.229 | 0.332 | 0.435 | 0.538 |
| 35–40 | 0.297 | 0.434 | 0.571 | 0.708 |

*आवाक्ष ऊँचाई : 1.37 मी. भूमि तल से (स्रोत : चर्तुवेदी 1985)

विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में जलाऊ लकड़ी की प्राप्ति में काफी अंतर है चाहे वह, समान भूमि में हो। मृदा या मौसम में थोड़ा भी अंतर आने से जैव उत्पाद में काफी अंतर आ जाता है। इस प्रकार प्रजाति में यह विशेष गुण है कि यह सभी प्रकार के आवास क्षेत्रों में शुष्क से लेकर अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में अनुकूलन की क्षमता पाई जाती है।

थार रेगिस्तान में विभिन्न नग्न स्थानों में स्थापित रोपण क्षेत्रों से प्राप्त जलाऊ लकड़ी की प्राप्ति तालिका–5 में दर्शाई गई है।

तालिका – 5 राजस्थान के थार रेगिस्तान में चार स्थानों में, विलायती बबूल से प्राप्त औसत जलाऊ लकड़ी प्राप्ति

| वृक्ष आयु (वर्ष) | जलाऊ लकड़ी प्राप्ति (किग्रा/वृक्ष) | | | |
|---|---|---|---|---|
| | झुँझुनूं (वर्षा: 395 मिमी) | सरदार शहर (वर्षा: 268 मिमी) | बीकानेर (वर्षा: 285 मिमी) | गड़रा रोड (वर्षा: 285 मिमी) |
| 4 | – | 42 | 15 | 16 |
| 5 | – | 37 | 24 | 42 |
| 6 | – | 36 | – | 44 |
| 7 | 79 | 38 | – | – |
| 8 | 139 | 50 | – | – |
| 9 | 52 | 42 | – | – |
| 10 | 137 | 54 | – | – |

वर्षा = औसत कुल वार्षिक वर्षा (स्रोत : मुंथाना और अरोडा, 1983)

# VII. प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने विद्यमान वृक्ष समूहों (Stands) का प्रबन्धन

शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में 70% से अधिक विलायती बबूल के प्राकृतिक पुनुरोद्भवन से बने वृक्ष समूह आक्रामित खरपतवार के रुप में पाए जाते हैं। प्राकृतिक पुनरूद्भवन, स्वतंत्र बीजों से जो कि पशुओं द्वारा फलियाँ खाने के बाद प्रकीर्णित कर दिए जाते हैं, उनसे या जड़ कन्डों, से होता है।

बहुत बड़ी मात्रा में इस प्रकार प्राकृतिक रुप से बढ़ते फैलने वाले वृक्ष समूह हालाँकि बढ़ती जनसंख्या की ईधन व चारे की जरुरत तो पूरा कर रही है किन्तु उपजाऊ कृषि योग्य भूमि में इसका अतिक्रमण एक चिंता का विषय है। एक बार स्थापित हो जाने के बाद इसका उन्मूलन बहुत मुश्किल है, इसलिये इस प्रकार के वृक्ष समूहों का प्रबन्धन एक बहुत बड़ा प्रश्न है तथा कुछ ही प्रयोगों का संदर्भ उपलब्ध है जिनमें भी छोटे प्रायोगिक क्षेत्रों में इसके प्रबन्धन का प्रयास किया है किन्तु खरपतवार के रुप में खड़े समूहों के प्रबन्धन का कोई संदर्भ उपलब्ध नहीं है।

## क. प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने वृक्ष समूहों के प्रकार

प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने वृक्ष समूहों को झाड़ी समूह व वृक्ष समूह में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक छोटे अनुमान के अनुसार कुल वृक्ष समूहों में से 70–75 प्रतिशत अपरिपक्व झाड़ी समूह ही हैं।

ये झाड़ी समूह जब कृषि क्षेत्र के पास होते हैं तो इन्हें खरपतवार अतिक्रमण समझा जाता है। इन झाड़ी समूहों को पुनः तीन श्रेणियों में वगीकृत किया जा सकता है।

- सघन अतिक्रमण लगभग 9000 तने/है.
- बंद झाड़ी समूह लगभग 1000–1100 वृक्ष/है. (5200–6700 तने/है.)
- खुले झाड़ी समूह, वृक्ष घनत्व 500–600 वृक्ष/है. (2600–3100 तने/है.)

चित्र **28.** विलायती बबूल का सघन झाड़ी समूह।

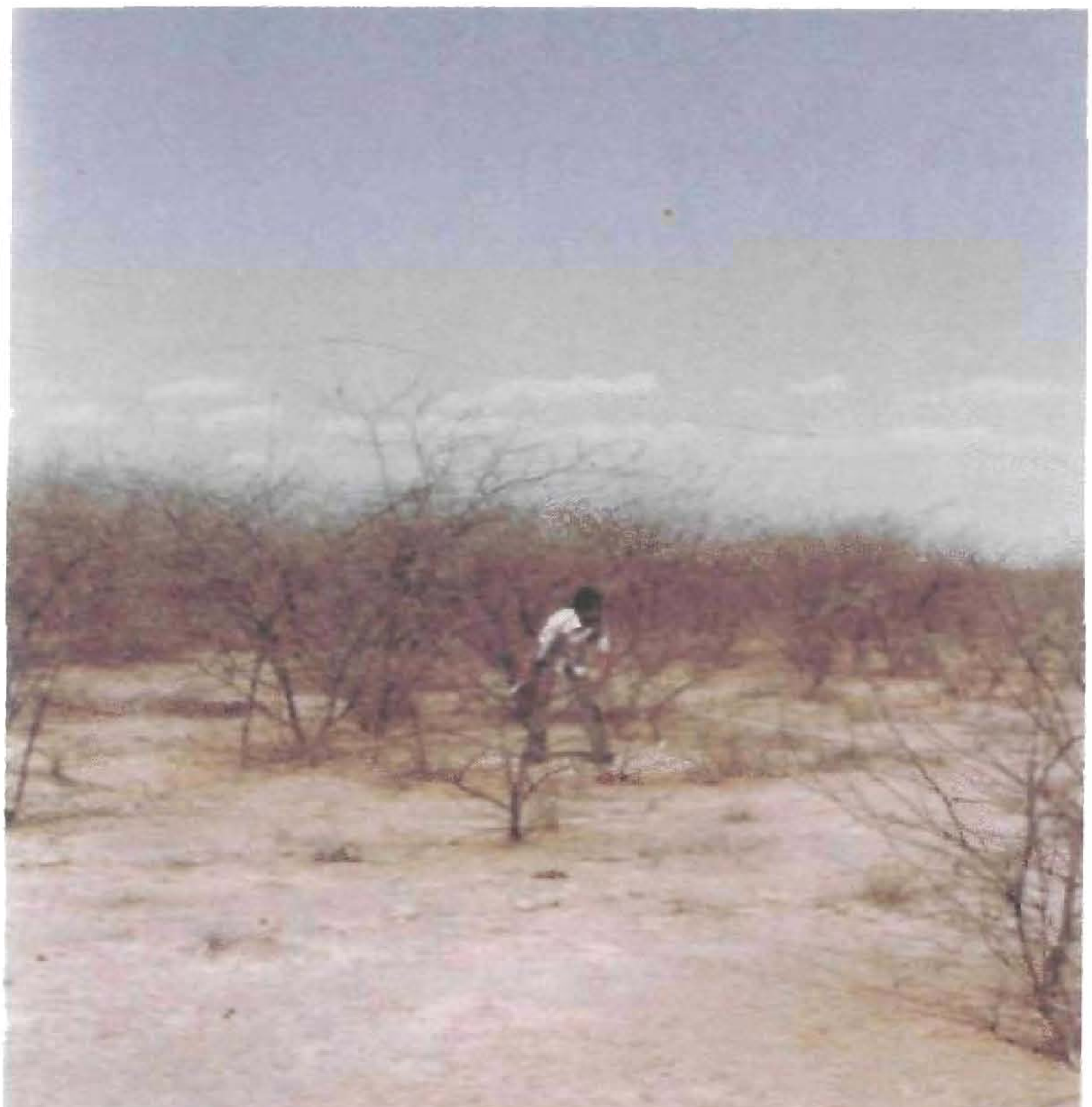

चित्र **29.** विलायती बबूल का ग्राम गोचर भूमि में काष्ठ समूह।

झाड़ी समूह की अधिकता का सबसे बड़ा कारण 2 वर्ष से छोटे पौधे को जमीन सतह से ईंधन हेतु बार–बार काटना है। झाड़ी समूह का प्रबन्धन सबसे कठिन होता है। ये मुख्यतः परती भूमि या खाली पडी राजस्व भूमि पर होता है।

विलायती बबूल, प्राकृतिक पुनुरुद्भवित खुले जगलों का लगभग 30% भाग बनाता है। ये मुख्यतः सार्वजनिक संपत्ति वाली संसाधनों (Common Property Resources) में पाया जाता है, जिनका लगभग पूरे देश में दुरुपयोग या अतिदोहन किया जा रहा है। कुछ इस प्रकार के संसाधन हैं, जैसे पैठन (गॉव के जल भंडार हेतु संभरण क्षेत्र), ओरण (वन क्षेत्र जिसे देवताओं के सम्मान में धार्मिक–सामाजिक नियम के आधार पर संरक्षित घोषित किया गया हो), गोचर (गाँव का चारागाह)। इनके अलावा विलायती बबूल संरक्षित वन क्षेत्रों में भी पाया जाता है।

ये अक्सर बंद समूहों या खुले चारागाहो में 200–250 वृक्ष/है. (1000–13000 तने/है.) व खुले वन–चारागाह में 100–125 वृक्ष/है. (500–650 तने/है.) में पाये जाते हैं। इस प्रकार के प्राकृतिक पुनुरूद्भवित वृक्ष समूहों का प्रबन्धन अपेक्षाकृत आसान होता है।

## ख. प्रबन्धन के तरीके

### *झाड़ी–समूहों का प्रबन्धन*

झाड़ी समूह में 80–100 है. के छोटे–छोटे क्षेत्रों से लेकर कई टुकडे हजारों हैक्टेयर की विशाल भूमि पर फैले रहते हैं। संसाधनों की कमी के कारण सपूर्ण रुप से इन्हें या तो वायुयान द्वारा खरपतवार नाशी के छिड़काव या जड़ों को बुलडोजर से काटकर, नष्ट करना संभव नहीं है।

जड़ों की जुताई से शत–प्रतिशत विलायती बबूल के समूह समाप्त हो जाते हैं किन्तु जमीन में विशाल बीज भंडार हो जाने के कारण 10–15 वर्ष में पुनः उच्च घनत्व वाला वृक्ष समूह बन जाता है।

भारत में झाड़ी समूहों को जलाऊ लकड़ी या चारकोल हेतु काट लिया जाता है। इस प्रकार की कटाई बड़ी कष्टसाध्य होती है। हालांकि वन–चारागाह विधि भारत में अधिक विकसित नहीं हो पाई है, किन्तु अन्य क्षेत्रों की जानकारी के आधार पर इनका अधिक उत्पादन व उचित उपयोग हेतु प्रबन्धन किया जा सकता है।

एक बार किसी क्षेत्र में स्थापित हो जाने के बाद एक मात्र स्थाई प्रबन्धन का तरीका यही है कि सघन, अगम्य वृक्ष समूहों को एकल वृक्ष बनने के लिए प्रेरित किया जाय। यह नवीन पौधों को खरपतवार अतिक्रमण के रुप में बढ़ने से रोकने में सहायता कर सकता है।

प्रबन्धन के लिए सर्वप्रथम क्षेत्र का नक्शा बनाना चाहिए। अनुमानित नक्शा भी काम कर सकता है। यदि वृक्ष समूह बहुत बड़ा हो (100 है. से ज्यादा) तो उसे 50–60 है. के छोटे–छोटे भागों में बाँट लेना चाहिए। 10X10 मीटर का नमूना क्षेत्र मानकर कई जगह से नमूने लेने चाहिए जिसमें वृक्षों की संख्या, प्रति वृक्ष तनों की संख्या, व उनका व्यास आदि नाप लेने चाहिए। इस प्रकार माप कर लेने से वृक्ष/तनों का प्रति है. घनत्व, व्यास व कुल घेरी हुई सतह की गणना हो जाती है। ये सभी मान, वृक्ष समूह के प्रकोष्ठ बनाकर, उनके बढ़वार की दर के आधार पर प्रबन्धन करने के लिए सही साक्ष्य उपलब्ध कराते हैं।

यह समूह प्रकोष्ठ समतल भूआकृति पर हो तो सबसे पहले 6–8 मीटर की पट्टियों में लम्बवत विरलन करना चाहिए। विरलन कमोबेश समूहों के केन्द्रीय क्षेत्र में करनी चाहिए। इसके लिए बुलडोजर की आवश्यकता होती है अन्यथा यह अत्यधिक श्रम व समय साध्य हो सकता हैं। ये पट्टियाँ मुख्यतः मजदूरों व उपकरणों के आवागमन हेतु जरुरी होती है। अब प्रत्येक वृक्ष समूह चार खंडों में बंट जाता है।

प्रत्येक खंड/प्रकोष्ठ को नजदीक से देखने पर झाड़ियों के बीच कुछ सुविकसित वृक्ष मिल सकते हैं। अब अगला कदम प्रारंभिक विरलन है। यह विरलन तनों का घनत्व को घटाकर 3000 तने/है. तक लाने के लिए किया जाता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि ऐसे तने जिनका व्यास 10 से.मी. से कम हो, को तेज आरी से काट दिया जाए। यदि विद्युतचालित आरी हो तो यह कार्य शीघ्र किया जा सकता है।

काटे हुए तने ईंधन या चारकोल बनाने में काम में लिये जा सकते हैं। औसतन 10 से.मी. व्यास के तने में 5 किलो लकड़ी (बिना सुखाई हुई) ईंधन के लायक होती है।

तनों को सतह से काटने पर, ऊपर से काटे गये तनों की अपेक्षा कम पुनः अंकुरण होता है। अतः सतह के बिल्कुल व्यास से काटना चाहिए।

खुले समूहों में कई वृक्ष अच्छा आकार बना लेते हैं। इन्हें अंतिम समूह के भाग मानकर छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार के समूहों का विरलन भी इस प्रकार करना चाहिए ताकि तनों की संख्या 2600–3000 / है. से घटकर लगभग 1000 /है. रह जाए।

ऊपर–नीची या पहाड़ी भू–आकृति में भी प्रारंभिक विरलन, समतल भू–आकृति जैसा ही होता है लेकिन पट्टी की चौड़ाई 4–5 मीटर तक घटाई जा सकती है क्योंकि यहाँ सभी कार्य हाथों से करने होते हैं। इस प्रकार के कार्य करने के लिए 150 मानव दिवस प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है।

प्रारंभिक व पट्टी में विरलन के बाद, नये अंकुरित व छोटे पौधों को जड़ सहित निकाल देना चाहिए। वृद्धि के मौसम की समाप्ति के बाद दूसरा विरलन करना चाहिए। 12 सेमी व्यास से छोटे सभी तनों को काट देना चाहिए। इसे सघन अतिक्रमण, बंद समूह व खुले समूहों में घनत्व घटकर 500–600 तने /है. रह जाता है।

दूसरे विरलन के बाद जुताई के लिए पर्याप्त स्थान बन जाता हैं जहाँ ट्रैक्टर से जुताई संभव हो वहाँ तवी द्वारा व जहाँ पारंपरिक तरीके से संभव हो वहाँ बैलों द्वारा जुताई कर देनी चाहिए।

बचे हुए तनों को अगले मौसम तक बढ़ने देना चाहिए। लगभग 150 सर्वाधिक मजबूत व सीधे तने प्रति हैक्टेयर की दर से चयन कर लेना चाहिए और इनके पार्श्व की शाखाओं को काट देना चाहिए। क्षेत्र की, यदि संभव हो, तो तवी से जुताई कर देनी चाहिए। यदि सतह से काटे तनों में वृद्धि हो तो उसे काट देना चाहिए तथा तने वृद्धि दर पर ध्यान रखना चाहिए।

चौथे वर्ष घनत्व को 100–150 तने/है. बनाए रखना चाहिए। चौथे व आगे के वर्षों में क्षेत्र को तवी या हल से दो बार जुताई करनी चाहिए। पार्श्व की शाखाओं को प्रत्येक वृद्धि के मौसम के जाने के बाद यानि नवम्बर के पहले पखवाड़े के बाद और बसंत से पहले या फरवरी के दूसरे पखवाड़े तक काट देना चाहिए।

सतह से कटे तने अक्सर पुनः वृद्धि कर लेते हैं। इन्हें प्रतिवर्ष अवश्य काटते रहना चाहिए।

सात वर्ष के बाद छंटाई की आवश्यकता नहीं रह जाती है क्योंकि इस समय तक वृक्ष इच्छित आकार ले लेता है। फिर भी विलायती बबूल के रोपण क्षेत्र में सफाई व जुताई नियमित रुप से करते रहना चाहिए ताकि किसी भी नये अनिच्छित प्रजाती के बीज अंकुरण को रोका जा सके।

## वन–चारागाह रोपण

यदि संभव हो तो खरपतवार वृक्ष समूह को वन–चारागाह में बदल देना चाहिए। 100–150 वृक्ष /है. का लक्ष्य प्राप्त हो जाने के बाद स्थानीय चारे की घासों को उगाना चाहिए। उदाहरण के लिए सेंवण व घामण घास शुष्क क्षेत्रों में, करनाल घास लवणीय–क्षारीय भूमि में लगाना चाहिए। अन्र्तसस्य से बीजीय अतिक्रमण रोकने के साथ–साथ वृक्षों की वृद्धि भी होती है। इस पद्धति का चक्र 25 वर्ष का होता है जब विलायती बबूल 35–40 सै.मी. व्यास प्राप्त कर लेता है।

यदि खरपतवार को ईंधन/चारकोल हेतु भी रखना हो तब भी अनुकूलतम उत्पादन हेतु प्रबन्धन आवश्यक है।

झाड़ी समूहों में कम वृद्धि होती है जबकि प्रबंधित बंद समूह में प्लान्टेशन लगभग 4444 तने/है. (पौधों की दूरी 1.5x1.5 मीटर) जिससे 6.25 टन / है. गीली जलाऊ लकड़ी प्राप्त हो जाती हैं। अतः यह सलाह दी जाती है कि तनों की संख्या को घटाकर 3500 / है. तक कर देनी चाहिए। जैसा कि पहले वर्णन किया गया है, पट्टी में विरलन जिसमें 5 सें.मी. व्यास से छोटे तनों को सतह से काटना व अन्य जिनका व्यास 8–9 से.मी. से ज्यादा हो, छोड़ देना चाहिए। प्रसार संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीणों को यह बताना चाहिए कि एक ही पौधे से प्रतिवर्ष तने नहीं काटने चाहिए। इस तरीके से प्रबन्धन व देखरेख से सघन अतिक्रमण व बन्द खरपतवार समूहों को ईंधन–लकड़ी उत्पादक रोपण में बदला जा सकता है। इसके अलावा यह ध्यान रखने योग्य बात है कि चारकोल बनाने वाली इकाइयाँ 8–9 से.मी. से अधिक व्यास के तने ही खरीदती है।

## ग. काष्ठ समूह (Woodland) का प्रबन्धन

विलायती बबूल के काष्ठ समूह यानि बन्द समूह (विस्तारित चारागाह) व खुले वन–चारागाह पारंपरिक दिशा–निर्देशों से प्रबन्धित किये जाते हैं। बंद समूहों के प्रबन्धन का उचित लक्ष्य यह है, कि 35 से.मी. व्यास वाले 100–125 वृक्ष / है. का घनत्व प्राप्त कर लिया जाय। यह इमारती लकड़ी के उत्पादन के तुलनीय है।

प्रगतिशील सोच में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी बहु–तनों वाले वृक्षों को एकल वृक्ष में बदलना होगा। इसके लिये कटाई व छंटाई करके सिर्फ सबसे मजबूत व अधिकतम सतही व्यास वाले एकल को छोड़ देना चाहिए।

इसके बाद सर्वश्रेष्ठ 100–125 एकल का प्रति हैक्टेयर की दर से चयन कर बाकी सभी को सतह स्तर पर काट देना चाहिए। काटे गये ठूंठों (जनउच) से छाल हटा देनी चाहिए। एकल का चयन इस प्रकार करना चाहिए कि वृक्षों के बीच लगभग दूरी 8–9 मीटर रहे।

इस प्रकार के क्षेत्रों में ,बहुवर्षीय घासें उग आती हैं, जिन्हें पशु स्वतंत्रता से चरते रहते हैं। प्रबन्धित एकलों की लगातार निगरानी रखनी चाहिए। यदि कुछ सतही वृद्धि दिखाई दे तो उसे तुरंत काट देना चाहिए। 6–7 वर्ष के लगातार प्रबन्धन के बाद इस प्रकार का पुनः अंकुरण लगभग समाप्त हो जाता है।

## घ. प्राकृतिक विलायती बबूल का सुधार

उपलब्ध विलायती बबूल के सुधार् की विधियाँ भी उपलब्ध है। काँटे विहीन या कम काँटे वाली, सीधे तने व अधिक फली उत्पादक एकल जो कि पेलिड़ा *(P. Pallida)* व अल्बा *(P. alba)* प्रजाती में होते हैं, विलायती बबूल (stock) के साथ कलम (scion) चढ़ाने में समायोजितीय होते हैं।

विलायती बबूल के एकल मातृ तनों पर उपरोक्त प्रजाती की क्लेफ्ट कलम (अध्याय 4) चढ़ाई जाती है। ये कलमित पौधे तीव्र वृद्धि वाले होते है। भारत में कलम चढ़ाने का अनुकूल समय अगस्त–सितम्बर का महीना होता है।

### *प्रोसोपिस* की प्रजातियों में कलम चढ़ाना

काजरी में विलायती बबूल को शुष्क क्षेत्र सस्यवानिकी के काष्ठीय घटक के रुप में अध्ययन किया गया है। सबसे उत्साहजनक परिणाम विलायती बबूल से मिले हैं। प्राकृतिक विलायती बबूल की खरपतवार समूह में वृक्ष घनत्व 100 / है. तक कम किया जाता है। इन एकल तनों पर पेरुवियन प्रजाती की कलम जो कि सीधी व काँटेरहित होती है, चढ़ा दी जाती है। ग्वार की फसल अन्तःसस्य के रुप में की जा सकती है। इस प्रकार उन्नत किये गये पौधों में चार वर्ष में 2.5 मीटर तक की वृद्धि व ग्वार की 0.4 टन / है की उपज प्राप्त की गई है।

मातृ पौधे से निकले तनों की नियमित कटाई व कलमित शाखा को बढ़ते देना चाहिए। यदि कलमित शाखा पर शाखन तीव्र हो तो सिकेटियर से हल्की छंटाई करनी चाहिए। ये कलमित पौधे सायन (scion) के गुण वाले वृक्ष बन जाते हैं।

## जन–सहभागिता

प्राकृतिक पुनुरूद्भवन से बने वृक्ष समूहों का प्रबन्धन आसान नहीं है। इनके प्रबन्धन में इस कार्यक्रम से जुड़े सभी का सहयोग आवश्यक है। इसके अलावा प्रबन्धन बहुत ही श्रम साध्य काम है, लेकिन दीर्घ काल में इसका प्रबन्धन लकड़ी उत्पादन व व्यावसायिक तौर पर लाभदायक हो सकता है।

संयुक्त वन प्रबन्धन कई राज्यों में अपरदित क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने हेतु सार्थक सिद्ध हुआ है। जन–सहभागिता इस प्रबन्धन में भी बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

कुछ ध्यान देने योग्य क्षेत्र हैं –

- नीतियाँ, जो सामुदायिक प्रबन्धन समूहों को शक्तिशाली बनाए।
- कार्यक्रम, जो कि सामुदायिक प्रबन्धन को सहायता करे।
- प्रसार कार्यक्रम, ताकि इस प्रकार के वृक्ष समूहों के प्रबन्धन का महत्व जन–जन तक पहुँचे।
- प्रक्रिया, जिससे वन सस्थाओं व समुदायों में संयुक्त योजना बन सके।

# VIII. विलायती बबूल के उपयोग

भारत में विलायती बबूल मुख्यतः जलाऊ लकड़ी के लिए एक तीव्र फैलने वाले खरपतवार के रूप में जाना जाता है। यद्यपि इसकी फलियाँ शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में पशुओं के चारे हेतु एक प्रमुख भाग होती है, फिर भी इसे वांछित महत्व नहीं मिल पाया है। दक्षिण अमेरिका में इसे खेजड़ी के समान महत्व प्राप्त है। इस अध्याय में इसकी संभावित उपयोगिता के बारे में बताया गया है हालाँकि इनमें से कुछ उपयोग अभी तक भारत में नहीं अपनाए गए हैं।

## क. लकड़ी की उपयोगिता

### *जलाऊ लकड़ी के रुप में*

शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में विलायती बबूल की लकड़ी घरेलू ईंधन का एक महत्वपूर्ण तथा आसानी से उपलब्ध स्रोत है। इसकी लकड़ी समान रुप से कम धुँएं के साथ जलती है। लकड़ी का कैलोरीमान बहुत ऊँचा है (4200 किलो कैलोरी/ किग्रा)

पौधे के तरुण अवस्था (2–3 वर्ष) में ही जलाऊ लकड़ी के सभी गुण आ जाते हैं जिससे हरी शाखाओं को ही एक–दो दिन धूप में सुखाकर काम में ले सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो अक्सर प्रतिदिन की आवश्यकता के अनुसार लकड़ी काट कर सीधे ही चूल्हे जलाने में उपयोग कर लेते हैं। इसकी लकड़ी लघु उद्योगों में भी ईंधन के रुप में काम में ली जाती है। यहाँ भट्टी में धातुओं की सफाई, मिट्टी के बर्तन बनाने व बेकरी में पकाने के लिए लकड़ी उपयोग में ली जाती है। इन उद्योगों में बड़ी मात्रा में लकड़ी की जरुरत होती है। अतः 10 से.मी. से ज्यादा व्यास के तने ही अक्सर उपयोग में लिए जाते हैं।

ईंधन के लिए 1–10 से.मी. की शाखाओं को लगभग एक मी॰ लम्बा काटकर, 10–15 शाखाओं की एक साथ गठरी बाँधकर गाँव/शहर में बेचने के लिए लाया जाता है। अक्सर छोटी शाखाओं (आधा मीटर तक) व लम्बी शाखाओं (एक मीटर से ज्यादा) को अलग–अलग बेचा जाता है। छोटी लकड़ी की 10–15 रुपए व लम्बी की 15–25 रुपए एक गठरी की कीमत मिल जाती है। कुल्हाड़ी से कटने में आसानी होने के कारण घरेलु उपयोग में अधिकतर 10 से.मी. से कम व्यास की लकड़ी काम में ली जाती है।

थार मरूस्थल में इसकी युवा शाखाओं को मानसून समाप्त होने के बाद काटकर घर के पास 15–20 दिन सूखने के लिए रख दिया जाता है। एक सामान्य रिवाज यह भी है कि जो पेड़ की कटाई करता है, वही व्यक्ति सूखी शाखाएं भी इकट्ठी करता है तथा इसमें पंचायत आदि संस्थाओं का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

## विलायती बबूल से विद्युत उत्पादन

इसकी लकड़ी को सीधे जलाकर या गैसीकरण द्वारा विद्युत उत्पादन योग्य पाया गया है। लकड़ी में गंधक की मात्रा कम होने से यह अन्य स्रोत (कोयले) जैसा प्रदूषक नहीं है। विद्युत उत्पादन के अभी तक कुछ प्रारंभिक प्रयोग अमरीका व भारत में किए गए है। यदि कोई त्रुटिरहित विधि विकसित हो सके तो इस प्रजाति के अथाह उपलब्ध संसाधन का विद्युत उत्पादन में लाभदायक उपयोग हो सकता है।

### *लकड़ी का कोयला बनाकर (चारकोल)*

लकड़ी अधिक स्थान घेरने वाली व परिवहन में महंगी साबित होती है। इसका कोयला बनाने से वजन कम होने के साथ कीमत व ऊर्जामान बढ़ जाता है। चारकोल का उपयोग मुख्यतः भोजनालय, बेकरी, छोटे लोहे का सामान बनाने एवं मक्का या चावल के दानों को भूनने के लिए उपयोग में लिया जाता है। चारकोल की कीमत स्थान विशेष व परिवहन लागत पर निर्भर करती है। सामान्यतः 20 किलो चारकोल भरी थैली 50 रुपए में मिलती है।

चारकोल का उत्पादन उसके उपभोग क्षेत्र से काफी दूर के स्थानों पर होता है जिनमें गुजरात का कच्छ व राजस्थान का पाली, जालोर, सिरोही इलाका मुख्य है। यहाँ यह रोजी–रोटी का मुख्य साधन है।

अधिक व्यास वाले तनों (10 सेमी से बड़े) का उपयोग उन्हें हवा की अनुपस्थिति में जलाकर चारकोल बनाने में किया जाता है। पारंपरिक रुप से मिट्टी से ढककर चारकोल बनाया जाता है।

संसाधित करने से पूर्व लगभग समान व्यास के तनों/शाखाओं का अलग–अलग ढेर बना लिया जाता है। फिर थोड़ा गीला करके मिट्टी से ढककर आग लगा दी जाती है। ढेर के आकार के अनुसार 3–8 दिन में चारकोल बनने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। इसके बाद ढेर को खोलकर चारकोल ठंडा होने दिया जाता है और अन्त में वर्गीकृत कर थैलों में भरकर बाजार में भेज दिया जाता है।

बेकार तेल के ड्रम, पीपों जिनमें वायु संवहन का प्रबन्ध हो, भी चारकोल बनाने में काम में लिये जाते हैं। एक किलो चारकोल बनाने के लिए लगभग 6–7 किलो (बनाने की विधि के अनुसार) लकड़ी की आवश्यकता होती है।

## चारकोल बनाने के लिए उन्नत विधि – रिटार्ट भट्टी

हालाँकि यह विधि अभी भारत में उपलब्ध नहीं है लेकिन कई देशों में बहुत प्रचलित है। इसमें धातु के बेलनाकार कक्ष में (2 मीटर लंबा व 1 मीटर व्यास) लकड़ी का ढेर जमा कर कक्ष के बाहर से आग लगाकर इस कक्ष में से गुजारी जाती है। इस प्रकार मात्र 8–48 घंटे में अधिक मात्रा में (लगभग 32 प्रतिशत) चारकोल बन जाता है।

### *इमारती लकड़ी के रुप में*

विलायती बबूल की लकड़ी को इमारती कार्यो में भी प्रयोग किया जा सकता है। अच्छे गोल तनों को फर्नीचर बनाने में, लम्बे व अपेक्षाकृत कम सीधे तने का खंभे व बल्लियों के रुप में तथा अन्य सभी का चिप्स, प्लाईबोर्ड, कार्डबोर्ड तथा अन्य कई प्रकार से संसाधित (रसायनिक या ताप) कर फर्नीचर बनाने में उपयोग किया जाता है। अधिकतम मूल्य वर्धन लकड़ी से बोर्ड या केन्ट बनाने में होता है। लकड़ी कठोर होने के कारण हाथ की आरी की बजाय मशीनयुक्त आरियों से इसकी कटाई–छंटाई होती है।

**टिप्पणी** – साफ, लगभग 2 मीटर लम्बे तने फर्नीचर बनाने के लिए सर्वोत्तम होते हैं। दुर्भाग्य से वर्तमान में अधिकतर वृक्ष 1–1.5 मीटर लम्बे व 20–30 सेमी चौड़े और अक्सर दरार या गाँठे युक्त होते हैं। अतः इस ओर बेहतर प्रबन्धन की अति आवश्यकता है।

भारत में फर्नीचर उद्योग में इसकी लकड़ी का प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में होता है। इसका मुख्य कारण सीधे तनों की अनुपलब्धता और कुछ हद तक अज्ञानता है। अन्य देशों में इसकी लकड़ी का अच्छी गुणवत्ता के कारण फर्नीचर बनाने में बहुतायत से उपयोग होता है। इसकी लकड़ी की गुणवत्ता शीशम या सागवान जैसी ही होती है (तालिका – 6)।

## छोटे तनों से फर्नीचर के लिए लकड़ी की प्राप्ति

फर्नीचर के कार्य में तनों की अधिकतम लकड़ी की प्राप्ति एक प्रमुख आवश्यकता है। अतः छोटे, मुड़े हुए तनों से लकड़ी प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बनता जा रहा है। अमरीका में किए एक सर्वेक्षण के अनुसार रसोई की अलमारी में 90 प्रतिशत उपयोग में ली गई लकड़ी 10 से.मी. चौड़ी व 1.6 मीटर से छोटी आकार की थी इसलिए छोटे तने भी फर्नीचर बनाने के उपयोग में लिए जा सकते हैं।

ये टुकड़े या तने आवश्यकतानुसार चौरस व समतल बनाए जा सकते हैं। इसके तने अक्सर थोड़े मुड़े हुए होते हैं। जब एक ब्लेड की आरी का उपयोग किया जाय तो तने की अवतल सतह की पहले कटाई की जाए, एक या दो कटाई के बाद सीधे किनारे उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सभी तरफ से कटाई करने से चौरस व समतल बोर्ड बनाए जा सकते हैं।

तालिका– **6 :** **विलायती बबूल शीशम व सागवान की लकड़ी के कुछ भौतिक व याँत्रिक गुणों का तुलनात्मक अध्ययन**

| गुण | विलायती बबूल | शीशम | सागवान |
|---|---|---|---|
| घनत्व (किग्रा/मी$^3$) | 721 | 850 | 641 |
| मुडन क्षमता | 97 | 125 | 102 |
| (MOE* $10^3$) | | | |
| सिकुड़न (%) | | | |
| आयतनात्मक | 4.7 | 8.5 | 7.0 |
| सीधाई में | 2.2 | 5.8 | 5.8 |
| गोलाई में | 2.6 | 2.7 | 2.5 |
| सतही कठोरता (किग्रा) | 1059 | 1439 | 453 |

MOE : Modules of Elasticity

वास्तव में इसकी लकड़ी, भारत में उपयोग में ली जाने वाली अच्छी इमारती लकड़ी के कई गुणों में समान व कुछ में अधिक ही है। इसकी लकड़ी में सफाई व पोलिश अच्छी होती है।

विलायती बबूल की लकड़ी में स्वर्णिम भूरे से लाल भूरे रंग के अलग सीधे दाने आभासित होते हैं जो शीशम की लकड़ी जैसे ही लगते हैं। अतः इसे अलमारी, फर्नीचर खिलौने या फर्श में उपयोग हेतु उष्ण कटिबन्ध की एक अच्छी लकड़ी माना जा सकता है। लकड़ी को संसाधित करने से पहले उसे उपचारित करना जरूरी है जिसमें लकड़ी में बिना कोई विकृति के नमी प्रतिशत 50 से 10 प्रतिशत तक लाना सबसे जरूरी है।

बोर्ड व कान्ट को उनकी मोटाई व आकार के अनुसार 3 से 12 महीने तक वायु में सुखाते हैं। अन्य तरीकों में भट्टी की गर्म वायु से सुखाना भी प्रचलित है। इसमें मात्र 15 दिन में इसकी लकड़ी से नमी की मात्रा 45 से 11% तक बिना किसी विकृति के घटाई जा सकती है।

## प्रोसोपिस आरा मशीन

सामान्यतया लट्ठो (logs) की यांत्रिक रुप से कटाई चेनआरी, हाथ में पकड़ने वाली आरी या चेन आरी जीग (chainsaw jig) और टेबल पर लगी चेन आरी या छोटी आरा मशीन द्वारा आसानी से की जा सकतीं है। कोई भी दक्ष बढ़ई प्रोसोपिस लट्ठों को आसानी से हाथ द्वारा जमीन पर रखकर सीधा सरल एवं बोर्ड के रुप में काट सकता है। इससे पतले से पतला बोर्ड जो कि लगभग 5 सेन्टिमीटर मोटा और 1-2 मीटर लम्बा हो उसे आसानी से काटा जा सकता है।

प्रोसोपिस लट्ठों के लिए अमेरिका व लेटिन अमेरीका में मुख्यतया विशेष प्रकार की आरा मशीन जिसमें गोल आरी और मुड़ी हुई आरी दोनों लगी होती है, को उपयोग में लाते हैं। सामान्यतया पुरानी आरा मशीनों में एक बड़ी गोल आरी जो कि प्लेटफार्म पर लगी होती है, लट्ठों को कॉटने के काम में आती है। इसमें लट्ठे को प्लेटफार्म पर लगा दिया जाता है एवं आरी के गोल–गोल घुमने से लकड़ी कट जाती है। इस प्रकार की आरा मशीन भारत एवं उसके पड़ोसी देशों में उपयोग में लाई जाती है। आजकल बाजार में मुड़ी हुई आरी कई आकृतियों में आ गई है जो कि विलायती बबूल लट्ठों को काटने में काम में लाई जाती है।

भारत में कुछ एक को छोड़कर कोई अच्छी तरह प्रबन्धिन प्रोश जुलिफ्लोरा (विलायती बबूल) का बड़ा स्टेण्ड नहीं है। परन्तु कुछ अच्छे पेड़ झाड़ी समूहों, ग्राम सामुदायिक भूमि में, खेतों के किनारे अवश्य पाए जाते हैं। इस स्थिति में केन्द्रीय आरा मशीन की तुलना में छोटी चलायमान आरा मशीन आर्थिक रुप से अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें परिवहन लागत की बचत होती है। उन स्थानों में जहाँ यह प्रजाति सघन रुप में पायी जाती है जैसे इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के किनारे। वहाँ केन्द्रीय आरा मशीन आर्थिक रुप से अधिक उपयोगी है।

हालाँकि इस विधि में धन व श्रम की अधिक आवश्यकता होती है पर उसी अनुपात में उत्पादकता बढ़ती है। साथ ही लकड़ी, छेदक कीट से मुक्त हो जाती हैं जिसके लिए अन्य रासायनिक उपचार करना पड़ता है। दक्षिण अमरीका में चलायमान भट्टी व्यावसायिक तौर पर उपलब्ध है।

इसकी लकड़ी को सुरा पात्र, संगीत वाद्य, पेंसिल व छोटे खिलौने बनाने के लिए उपयोगी पाया गया है। भारत में इसका उपयोग धीरे–धीरे फर्नीचर, (चित्र 30) कुटीर उद्योग, कृषि औजार आदि बनाने में बढ़ता जा रहा है।

चित्र **30.** विलायती बबूल की लकड़ी से बनाई खाने की टेबल एवं कुर्सी।

## ख. फली की उपयोगिता

### *फली का पशु चारे में उपयोग*

विलायती बबूल की फलियों का उपयोग गाय, बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़े आदि के चारे के रूप में लम्बे समय से किया जा रहा है। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में फली आने के मौसम में इन वृक्षों के पास चरवाहों को पशुओं के झुण्ड के साथ देखा जा सकता है तथा लगभग 60% फली गिरते ही पशुओं द्वारा खा ली जाती है।

### विलायती बबूल से फली उत्पादन

विलायती बबूल की फली के उत्पादन के बारे में कोई क्रमवार अध्ययन उपलब्ध नहीं है। काजरी के वैज्ञानिकों द्वारा 1991–92 में गुजरात, राजस्थान व उत्तर प्रदेश के सर्वेक्षण में लगभग 50 वृक्षों का फली उत्पादन देखा गया तथा औसतन 20 किलो/वृक्ष तथा 5–15 किलो/वृक्ष की सीमा में उत्पादन पाया गया। ब्राजील के अध्ययन के अनुसार आदर्श प्रबन्धन से 10x10 मीटर अन्तराल की दूरी पर स्थित रोपवन से 6 टन फली/हैक्टेयर/वर्ष प्राप्त हुई जिनमें कुछ वृक्षों से 170 किलो तक फलियाँ प्राप्त हुई।

भारत में इसकी फलियों को संसाधित कर पशु खाद्य में शामिल करने के कुछ प्रयास किए गए हैं। फलियों को 4–5 सेमी लम्बे टुकड़ों में काटकर 60 डिग्री सेंटिग्रेड तापमान पर 8 घंटे नमी की मात्रा 7% तक होने तक सुखाया जाता है। फिर इन्हें डिस्क–मिल में डिस्क के बीच दूरी 3–4 मि.मी. रखकर पीसा जाता है ताकि बीज व बीजावरण न पिसे। इसके बाद 1.2 मिमी की चलनी से छानकर पशु आहार हेतु आटा तैयार किया जाता है। इसे गेहूँ की भूसी, मूँगफली के छिलके कपास बीज या चावल की भूसी के साथ मिलाकर आहार बनाया जाता है।

### फली प्रयोग से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि

विवेकानन्द अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान माडवी, भुज से प्राप्त सूचना के अनुसार इस संस्थान में कई दुग्ध उत्पादक इसकी फली से बने चारे की बेहद माँग के साथ आते है। उनके अनुसार इससे दुग्ध उत्पादन में 20 % तक वृद्धि हो जाती है। इस संस्थान ने फली का आटा बनाने के लिए मशीन भी विकसित कर ली है जो बीज को सफाई से अलग कर देती है (चित्र 31 एवं 32)।

चित्र 31. विलायती बबूल की फलियों को साफ करने हेतु थ्रेसिंग मशीन।

चित्र 32. पशु आहार के रुप में विलायती बबूल का आटा।

विलायती बबूल की चारे के रूप में उपयोगिता इसकी फली में विद्यमान है। इसकी फलियाँ गाय, बकरी, भेड़, घोड़ा आदि सभी पशुओं को काफी पसन्द आती है। पकी हुई फली का औसत पोषक मान इस प्रकार हैः–

| | |
|---|---|
| नमी | 12 % |
| प्रोटीन | 10 % |
| पचनीय प्रोटीन | 8 % |
| वसा | 2 % |
| रेशा | 14 % |
| कुल घुलनशील शर्करा | 55 % |
| केल्शियम | 0.20 % |
| फास्फोरस | 0.15 % |

## फली का मानव खाद्य में उपयोग

विलायती बबूल के वंश की प्रजाति खेजड़ी की फलियाँ सब्जी के रूप में थार रेगिस्तान में काफी समय से प्रयोग में ली जा रही हैं किन्तु विलायती बबूल की फलियों का संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में मानव खाद्य में शायद ही कहीं उपयोग होता हो (चित्र 33) । दक्षिणी अमरीका में विशेषकर पेरू देश में इसकी फलियों का कई प्रकार से उपयोग किया जाता हैं जो निम्न प्रकार है–

### *फली के आटे का बेकरी में उपयोग*

पहले वर्णित विधि से प्राप्त आटे को 250 माइक्रोन की चलनी से छाना जाता है। बिस्कुट बनाने में 24 % तक इस आटे को गेहूँ के आटे में मिलाया जाता है तथा आटे को गूंथकर बिस्कुट बनाकर 205 डिग्री सेंटिग्रेड पर 15 मिनट तक पकाया जाता है। तालिका 7 में पारंपरिक बिस्कुट व विलायती बबूल की फली से बनाये जाने वाले बिस्कुट में प्रयुक्त सामग्री का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। इन दोनों प्रकार के बिस्कुट के स्वाद में अंतर करना मुश्किल होता है।

तालिका 7 पारंपरिक व विलायती बबूल की फली के आटे से बिस्कुट बनाने के लिए सामग्री (6 किलो बिस्कुट हेतु)

| सामग्री | पारंपरिक बिस्कुट | विलायती बबूल के बिस्कुट |
|---|---|---|
| गेहूँ का आटा | 4000 | 3200 |
| विलायती बबूल की फली का आटा | - | 1000 |
| शक्कर | 1200 | 1000 |
| शक्कर की चाशनी | 320 | 320 |
| घी/मक्खन | 1200 | 1200 |
| दूध पाउडर | 160 | 160 |

चित्र 33. प्रो पैलिडा की फलियों से प्राप्त खाद्य उत्पाद।

### *कॉफी के विकल्प के रूप में फली का प्रयोग*

ब्राजील व पेरू में इसकी फलियों का प्रयोग कॉफी बनाने में किया जाता है। इसके लिए फ़लियों को मिट्टी के बर्तन में आग पर 30 मिनट तक भूना जाता है। भुनने की प्रक्रिया के पूरे होने से 3–4 मिनट पहले चार चम्मच शक्कर/ किलो फली के लिए मिला दिया जाता है। भूने हुए पदार्थ को ठंडा होने पर पीस कर कॉफी के रूप में प्रयोग करते हैं। कुछ लोग इसे व कॉफी को 50:50 अनुपात में मिलाकर कॉफी की असली गंध व स्वाद पाने के लिए पीते हैं।

### *फली से शर्बत बनाना*

उत्तरी पेरू के निवासी फली से मीठा पदार्थ अल्गारोबिना निकालकर उपयोग करते हैं। अल्गारोबिना बनाने के लिए 350 ग्राम फलियों को एक किलो पानी में 2 घंटे तक उबालकर अच्छी तरह मसल कर छान लिया जाता है। यह पदार्थ शर्बत से कुछ गाढ़ा होता है। वहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में इसे फल रस या दूध में मिठास व सुगंध के लिए मिलाकर उपयोग में लेते हैं जबकि शहरी इलाकों में इसे बेकरी में तथा एक विशिष्ट सुरा मिश्रण बनाने में उपयोग किया जाता है।

## ग. अन्य प्रत्यक्ष उपयोग

### *विसरित गौंद*

विलायती बबूल के तने से सर्दी व गर्मी में गौंद विसरित होता है। औसतन एक पेड़ से 30–40 ग्राम गौंद निकलता है। इसमें कुछ ऐल्कलाइड होने से स्वाद कड़वा होता है अतः सीधे खाने में नहीं उपयोग लिया जाता है किन्तु पान के लिए सुपारी के संसाधन में, कपड़ा उद्योग में व चिपकाने वाले पदार्थ बनाने में उपयोग किया जाता है। यदि उचित तरीके से उपलब्ध रोपवनों से गौंद निकाला जाये तो करोड़ों रुपए की प्रतिवर्ष आमदनी हो सकती है।

*बीज से गौंद*

विलायती बबूल के बीज में गैलेक्टोमेनन पोलीसेकराइड़ प्रकार का गौंद होता है। यह गौंद गाढ़ा करने, स्थिरीकरण व जैली बनाने वाले प्रयोग जैसे आईसक्रीम, सॉस, चीज, योजत आदि में उपयोग में लिया जाता है। गुणों में यह ग्वार गौंद के समान होता है और खाद्य् गौंद के एक नए स्रोत के रूप में विकसित करने के लिए शोध कार्य का प्रमुख विषय बना हुआ है।

## विलायती बबूल के गौंद के शोध परीक्षण

गाढ़ेपन में इसका गौंद ग्वार के गौंद के समान ही होता है। बीज से गौंद निकालने हेतु विभिन्न तरीके जैसे जलीय (aqueous) निष्कर्षण, यॉंत्रिक विधि से तोड़ना व अम्ल से बाह्य आवरण नष्ट करना आदि है। अभी तक यांत्रिक विधि से अलग करना संभव हुआ है लेकिन इस विधि से उत्पादन कम मिलता है। किन्तु टुकड़ों से गौंद निकालना सिर्फ फलीय निष्कर्षण से ही संभव है।

## औषधीय उपयोग

*विलायती बबूल के कई औषधीय उपयोग भी पाए गए हैं।*

- इसका शर्बत बच्चों में वजन व बढ़वार में कमी को दूर करने के लिए दिया जाता है।
- इसका शर्बत माँ के दूध को बढ़ाने वाला माना गया है।
- कफ निकालने में भी इसका शर्बत काम में लिया जाता है।
- इसकी फली से बनी कॉफी पाचन में गड़बड़ी व त्वचा के छाले को ठीक करने में उपयोगी है।

## घ. अप्रत्यक्ष उपयोग

*शहद व मधु मोम*

विलायती बबूल शहद उत्पादन का एक स्रोत है विशेषकर गुजरात के कच्छ क्षेत्र में। इस पर मधुमक्खी अर्द्धवृत्ताकार या अर्द्धवलयाकार व 10X12 से.मी. 45X60 से.मी. तक आकार के छत्ते पेड़ पर विभिन्न ऊँचाईयों पर बनाती है। शहद का सबसे ज्यादा उत्पादन मार्च–अप्रैल में व सबसे कम नवम्बर–दिसम्बर में होता है। अतः मार्च से मई माह उत्पादन लेने के लिए उत्तम समय है।

शहद निकालते समय छत्ते के चारों ओर धुँआ कर दिया जाता है जिससे मधुमक्खियाँ शहद छत्ते को छोड़कर आसपास के क्षेत्रों में उड़ जाती हैं। शहद इकट्ठा करने वाला व्यक्ति छत्ते के ऊपरी किनारे का हिस्सा काट लेते हैं और बाकी हिस्सा शाखा पर ही छोड़ देते हैं। काटे हुए हिस्सों को कपड़े में छानकर शहद निकाल लेते हैं। एक छत्ते से 175–800 ग्राम तक शहद मिल जाता है। इसके बाद बचे हुए पदार्थ को मसलकर मोम निकाला जाता है जो औद्योगिक रूप से काफी उपयोगी पदार्थ हैं।

विलायती बबूल के रोपवनों से अन्य इलाकों में भी शहद इकट्ठा किया जा सकता है जहाँ मधुमक्खी न हो वहाँ इन्हें लाया जा सकता है। यदि इस कार्य को उचित योजना से किया जाये तो शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में रोजगार व आय का अच्छा साधन बन सकता है।

### कच्छ में विलायती बबूल का प्रबन्धन

गुजरात में कुल 62,180 वर्ग किमी शुष्क क्षेत्र हैं जिसका 73 प्रतिशत कच्छ जिले में हैं तथा संपूर्ण क्षेत्र विलायती बबूल से भरा हुआ है। गुजरात वन विकास निगम इस प्रजाति से ग्रामीण जीवन को लाभान्वित करने हेतु पिछले 15 वर्ष से उपयोग कर रहा है। पिछले पाँच वर्षो में निगम ने 400 टन शहद, 15 टन मधुमोम, 57 टन प्रथम श्रेणी व 716 टन द्वितीय श्रेणी गौंद प्राप्त किया है। इससे 7.2 लाख मानव श्रम दिवस का उपयोग हुआ। कच्छ क्षेत्र में विलायती बबूल जीविका का प्रमुख साधन बन गया है।

## *कृषिवानिकी में उपयोग*

विलायती बबूल की निकटतम प्रजाति खेजड़ी का थार मरूस्थल में कृषि वानिकी में परम्परागत रूप से अच्छा स्थान है किन्तु विलायती बबूल को सिर्फ खेत की बाड़ पर लगाना या वायुरोधक के रूप में ही किसान पसंद करते हैं।

## *विलायती बबूल के साथ अन्तरशस्य*

ब्राजील के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में थोर (Cactus) की चारे व खाने योग्य प्रजातियों को विलायती बबूल के साथ अन्तरशस्य के रूप में उगाया जाता है। खाद्य फसलों की भी खेती विलायती बबूल के साथ की जा सकती है। इसमें मक्का के लिए 10X10 मीटर व लौविया/चौला के लिए 2X1 मीटर के अन्तराल पर एकान्तरित पंक्तियाँ बनाई जाती है। धामण (Cenchrus ciliaris) घाँस के लिए, वृक्ष के चारों ओर 2 मीटर व्यास क्षेत्र छोड़कर घास लगाना ठीक रहता है।

## *भारत के लिए वन–चारागाह पद्धति*

भारत में क्षारीय भूमियों के लिए विलायती बबूल के साथ करनाल घास (Leptachloa fusca) उपयुक्त पाई गई। इस घास के साथ 5X3 मीटर पर विलायती बबूल को लगाने पर चार वर्ष में 15 कटाई से 46 टन/हैक्टेयर हरा चारा प्राप्त हुआ। साथ ही 6 वर्ष बाद विलायती बबूल से 80 टन/ हैक्टेयर सूखी लकड़ी प्राप्त हुई। इस पद्धति को अपनाने के बाद क्षारीय भूमि में अप्रत्याशित सुधार हुआ और 4 वर्ष बाद वह इस योग्य हो गई कि उसमें कम क्षारीयता सहन करने वाली फसलें जैसे बरसीम आदि की खेती की जा सकती है।

# विलायती बबूल के वन–चारागाह पद्धति की उत्पादकता

भारतीय घास व चारा अनुसंधान संस्थान झाँसी के दीर्घकालीन अध्ययन में बताया है कि विलायती बबूल के साथ अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में कई घासें भी सहयोगी रूप में उत्पादन दे सकती है। एक ऐसे परीक्षण क्षेत्र में जहाँ पीएच 6.9 तथा उथली बलुई दोमट मिट्टी थी वहाँ विलायती बबूल 5X5 मीटर की दूरी पर तथा क़तारों के बीच धामण और क्राइसोपोगन घास को लगाया। दूसरे परीक्षण क्षेत्र में बीहड़ वाली भूमि में जिसका पीएच 9.8 था, विलायती बबूल की कतारों के बीच धामण, क्राइसोपोगन व बोरथ्रोक्लोआ घास को लगाया गया। 9 व 18 साल बाद दोनों क्षेत्रों की उत्पादकता को निम्न तालिका में दिखाया गया है–

| | उत्पादकता (टन/हैक्टेयर/वर्ष) | | |
|---|---|---|---|
| | क्षेत्र 1 | | क्षेत्र 2 |
| | 9 साल | 18 साल | 9 साल |
| चारा (घास) | 3.70 | 2.41 | 2.97 |
| ऊपरी चारा (फली) | 0.25 | 0.47 | 0.21 |
| खाद (वृक्ष की पत्ती) | 0.10 | 0.24 | 0.08 |
| जलाऊ लकड़ी (शाखाएं) | 1.64 | 3.79 | 1.68 |
| छोटी लकड़ी (तना) | 1.25 | 2.90 | 1.13 |
| कुल योग | 6.94 | 9.81 | 6.07 |

(स्रोतः तोमर व अन्य 1999)

## *भूमि संरक्षण*

पश्चिमी राजस्थान के 80% भाग में या तो चलायमान या अर्द्ध स्थापित टीबे हैं यह सड़क या रेल मार्ग रोककर; नहरों व कभी–कभी घरों को रेत से भरकर अक्सर सामान्य जनजीवन में बाधा पहुँचाते रहते हैं। अध्ययनों से मालूम हुआ है कि ग्रीष्म ऋतु में 2 टन/हैक्टेयर की दर से मिट्टी इन क्षेत्रों में इधर–उधर हवा के साथ बहकर अपरदन करती है। वानस्पतिक आच्छादन इसके लिए सर्वोत्तम उपाय है। जिससे रेत का आवागमन रूकने या धीमा होने से मृदा अपरदन रोकने में सहायक होता है। इसमें इजरायली बबूल व विलायती बबूल से इस प्रकार का अपरदन 60 प्रतिशत तक रूक सकता है। पश्चिम राजस्थान में लगभग एक लाख हैक्टेयर क्षेत्र में विलायती बबूल व इजरायली बबूल का रोपण करके टीबा स्थिरीकरण का कार्य किया जा चुका है।

वृक्ष लगाने का कार्य कई तरीकों से किया जाता हैं जिनमें मुख्य हैं –

- टीबों पर समूह में रोपण
- नदी किनारों पर कतारों में रोपण
- सड़कों के दोनों किनारों पर एक कतार में रोपण
- वायुरोधक के रूप में (एक या दो कतार) खेत की बाड़ पर

## *भूमि सुधारक*

विलायती बबूल का बलूई व लवणीय–क्षारीय भूमि में इसकी पत्तियों व जड़ों का भूमि में सड़–गलकर मिलने से भूमि सुधार का कार्य हो पाता है। विलायती बबूल के लगाने से 20 वर्ष के दीर्घकाल में मृदा का पीएच 10.9 से 9.2 तक नीचे आ जाता है तथा कार्बनिक कार्बन 0.12 प्रतिशत से 0.33 प्रतिशत तक बढ़ जाता है जोकि किसी भी चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों द्वारा किए गए इस प्रकार के सुधार से कहीं ज्यादा है। इसी प्रकार का भूमि सुधार रेतीले क्षेत्रों में भी पाया गया है।

## *कुटीर या लघु उद्योग में विलायती बबूल के उपयोग*

उपरोक्त बताए गए उपयोगों के अलावा आर्थिक, सामाजिक स्थिति व भौगोलिकता के आधार पर विलायती बबूल का कई प्रकार से उपयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर देशी तकनीक द्वारा झाड़ीनुमा पौधे से टोकरी बनाने में किया जाता है। कुछ बड़े तने 10–12 सेमी व्यास के, को रसोई के छोटे औजार बनाने में उपयोग किया जाता है।

# परिशिष्ट 1

Areas of special interest or expertise are given in italics.

Dr HM Behl
National Botanical Research Institute
Rana Pratap Marg
Lucknow 226001
UP
*plantations, fuelwood, energy*

Dr Ram Pal Bisht
Bhoruka Charatible Trust
VPO Bhorugram, Nangal Kalan,
Rajgarh
Churu District 331 035
Rajasthan
*community management, establishment*

Dr JN Daniel
BAIF Development Research
Foundation
Warje
Pune 411029
Maharashtra
*agroforestry, community management*

Dr MC Desai
College of Vet. and Animal Science
Gujarat Agricultural University
Sardar Krushi Nagar 385506
Gujarat
*pod processing, animal feed*

Shri. Prabhakar Dubey
Forestry Research Institute
18-G.T. Road
Kanpur 24
UP
*wood processing, genetic improvement*

Dr Kanzaria
Vivekand Training and Research
Institute
Madhvi
Kutch
Gujarat
*pod processing machinery*

Dr Ashwani Kumar
Forestry Research Institute
UP Forestry Department
Kanpur 208024
UP
*genetic improvement, utilisation*

Dr J Nazareth
Institute for Studies and
Transformations
1 Raj Laxmi Bhavan
Ahmedabad 380013
Gujarat
*soil fertility*

Dr M Osman
Central Research Institute for Dryland
Agriculture (CRIDA)
Santosh Nagar, Hyderabad 500059
AP
*management, charcoal*

Dr PS Pathak
Indian Council of Agricultural Research
(ICAR)
Krishi Bhawan
Delhi
*agroforestry systems, fodder*

Dr M Ray
Indian Council of Forestry Research
and Education (ICFRE),
PO New Forest
Dehradun 248006
*wood processing, utilisation*

Dr A Sharma
Tata Energy Research Institute (TERI)
Habitat Place
Lodhi Road
New Delhi 11003
*plantations, establishment*

Dr G Singh
National Research Centre -
Agroforestry
Pahuj Dam, Jhansi Gwalior Road
Jhansi 284003
UP
*site preparation, agroforestry systems*

Col. Narendra Singh
ZSA-16,
BJS Colony
Jodhpur
Rajasthan
*community management, utilisation*

Dr RP Singh
8 Sardar Club
Polo Ground
Jodhpur
Rajasthan
*agroforestry, management*

Dr Srivastava
Arid Forest Research Institute
Pali Road
Jodhpur
Rajasthan
*diseases, mycorrhizae*

Dr JC Tarafdar
Central Arid Zone Research Institute,
Light Indust. Area
Jodhpur 342003
Rajasthan
*mycorrhizae and rhizobium*

Dr Pratibha Tewari
Central Arid Zone Research Institute
Light Industrial Area
Jodhpur 342003
Rajasthan
*food uses, nutrition*

Prof OP Toky
Department of Forestry
Haryana Agricultural University
Hisar 125 004
Haryana
*vegetative propagation, improvement*

Dr PS Tomer
Indian Grassland and Fodder
Research (IGFRI)
Jhansi 284003
UP
*fodder, agroforestry*

Dr AK Varshney
Development Corporation Ltd
78 Alka Puri
Varoda
Gujarat
*charcoal, honey, marketing*

M Yousef, M Gaur
Arid Forest Research Institute
Pali Road
Jodhpur 342005
Rajasthan
*insect pests and control*

# परिशिष्ट 2

Areas of special interest or expertise are given in italics.

Mariano Cony
IADIZA
PO Box 507
5500 Mendoza
Argentina
*genetic improvement, establishment*

Peter Felker
University of Santiago del Estero, Av. Belgrano S 1912
4200 Santiago del Estero
Argentina
*establishment, processing, utilisation*

Mari Galera
Universidad Nacional de Córdoba
CC 509
5000 Córdoba
Argentina
*pods utilisation, seed collections*

Ramon Palacios
Faculty of Natural Sciences
University of Buenos Aires
1428 Buenos Aires
Argentina
*genetics, breeding, seed collections*

Rieks van Klinken
CSIRO Entomology
PMB 3 Indooroopilly
Queensland 4068
Australia
*biological control, insect pests*

Ray Ward
Pilbara Mesquite
PO Box 520, Karratha 6714
Western Australia
Australia
*wood processing, utilisation, marketing*

Mario Antonino
International *Prosopis* Association
Av Gal. San Martin 1000, Bongi 50630
Recife, Pernambuco
Brazil
*propagation, utilisation*

Paulo Cesar Lima
EMBRAPA-CPATSA,
Petrolina,
Pernambuco
Brazil
*establishment, production, utilisation*

Maria Theresa Serra
Universidad de Chile
Casilla 9206
Santiago
Chile
*wood technology, management systems*

Lars Graudal
DANIDA Forest Seed Centre
Krogerupvej 21
3050
Denmark
*seed collections, biomass estimation*

Mohammed El Fadl
Dept. of Forest Ecology
University of Helsinki
PO Box 28, Fin- 00014
Finland
*pruning, coppicing, stand management*

Ronald Bellefontaine
CIRAD - Forêt
Baillarguet, BP 5035
34032 Montpellier
France
*plantation systems, establishment*

Yves Dommergues
CNRS
11 Rue Maccarani
06000 Nice
France
*nitrogen fixation, rhizobium*

Henri Le Houérou
CEFE/ CNRS
327 Rue Al De Jussieu
34090 Montpellier
France
*forage production, range management*

Lorenzo Maldonado
INIFAP
Av. Progresso No. 5
Col. Viveros de Coyoacan, CP 04110
Mexico DF
*system management*

Cristel Palmberg-Lerche
FAO Forestry Department
Viale delle Terme di Caracalla, I - 00100 Rome
Italy
*systems, genetic resources*

Tony Simons
ICRAF
PO Box 30677
Nairobi
Kenya
*nursery management*

Rafiq Ahmad
Department of Botany
University of Karachi
Karachi 75270
Pakistan
*plantations, establishment, salt tolerance*

Angel Díaz Celis
CONCYTEC
Los Tulipanes 180
Urb. Los Parques Chiclayo
Peru
*ecology, utilisation*

Gaston Cruz
University of Piura
Apdo. 353
Piura
Peru
*pod processing, human foods*

Ousman Diagne
ISRA-DRPF
BP 3120
Dakar
Senegal
*N fixation, rhizobium, mycorrhizae*

Helmut Zimmerman
Plant Protection Research Institute,
Private bag X134
Pretoria 001
South Africa
*biological control, utilisation*

Steve Bristow
c/o SOS Sahel UK
1 Tolpuddle St.
London N10XT
UK
*establishment, stand management*

Jeff Burley
Oxford Forestry Institute
South Parks Road
Oxford OX1 3RB
UK
*management, genetic improvement*

Peter Wood
Agroforestry Consultant
15 Rowlands Close
Oxford OX2 8PW
UK
*product development, management*

Jerry Lawson
W.W.Wood Co.
PO Box 244, Pleasanton
Texas 78064
USA
*wood processing, machining, marketing*

Ken Rogers
Texas Forest Service
2136 Tamus, College Station
Texas 77843-9988
USA
*wood harvesting, processing, utilisation*

Darrell Ueckert
San Angelo Research Station
7887 N. Highway 87, San Angelo
Texas 76901
USA
*range ecology, weed control,*

# संदर्भ


CAZRI (Central Arid Zone Research Institute). 1995. To evaluate *Prosopis* spp for biofuel and pod production for arid semi-arid and salt affected soils of India. Final Progress Report, Indo-US Project, Grant No. FG-IN-749 (IN-AU-420). CAZRI, Jodhpur, India. 19p.

Chaturvedi, A.N. 1985. Firewood Farming on Degraded Lands. UP forest Bulletin No 50. Research and Development Circle, Luknow, Uttar Pradesh, India. 52p.

Dagar, J.C. 1998. Ecology and management of some important species of *Prosopis*. In: Tewari, J.C., Pasiecznik, N.M., Harsh, L.N., Harris, P.J.C. (*Editors*) *Prosopis* Species in the Arid and Semi-Arid Zones of India. The Prosopis Society of India and HDRA, Coventry, UK. pp 23-26.

Harsh, L. N. 1993. Afforestation techniques for watershed areas. In: Singh, H. P, Bhati, T. K. (*Editors*). Manual for Development of Model Watershed Projects in DPAP and DDP Areas of India. Government of India, Ministry of rural Development, New Delhi, India. pp 81-92.

ICFRE (Indian Council for Forestry Research and Education). 1994. Vilayati babul (*Prosopis juliflora*). ICFRE, Dehra Dun. 16p.

Muthana, K.D. and Arora, G.D. 1983. Effect of seed weight on germination and seedling quality of *Prosopis juliflora* (SW) DC. Annals of Arid Zone 33 (3):253-254.

NFTA (Nitrogen Fixing Tree Association). Unknown. Production, Management and Use of Nitrogen Fixing Trees Manual. NFTA, Hawaii, USA.

Singh, G. 1998. Practices for raising *Prosopis* plantations in saline soils. In: Tewari, J.C., Pasiecznik, N.M., Harsh, L.N., Harris, P.J.C. (*Editors*) *Prosopis* Species in the Arid and Semi-Arid Zones of India. The *Prosopis* Society of India and HDRA, Coventry, UK. pp 63-68.

Tomer, P.S., Roy, M.M. and Gupta, S.K. 1999 *Prosopis juliflora* (Swartz) DC - A promising tree for utilization of degraded lands in Bundelkhand region. In: Pasiecznik, N.M., Harsh, L.N. and Tewari, J.C. (*Editors*) *Prosopis*: State of Knowledge Workshop Report (held at CAZRI, Jodhpur, India). Henry Doubleday Research Association, Coventry, UK. 34p.

Weber, F.R. and Stoney, C. 1986. Reforestation in arid lands. Volunteers in Technical Assistance, USA. 335p.